हरियाली तीज का पर्व अगस्त महीने में मातृ-दिवस या विश्व मातृ दिवस के रूप में पूरे हर्षोल्लास के साथ मनाता है। नारी को समाज में माता के रूप में दर्शाने का श्रेय केवल हिन्दू धर्म को ही है, अन्य मत, मज़हब, रिलिजन इस बात को स्वीकार तक नहीं करते।

जयपुर, राजस्थान में अक्षय तृतीया, श्रावणी अथवा हरियाली तीज के दिन एक भारी जुलूस निकाला जाता है। राजा के महल से सबसे पहले नागरिकों के अलग-अलग समूह रंग-बिरंगी विजय-पताका लिये हुए जुलूस के रूप में निकलते हैं। इसके पश्चात् एक के बाद एक करके बहुत सजे हुए पच्चीस हाथियों की सवारी आती है। इसके बाद क्रमश: थल-सेना, घुड़-सेना, तोपखाना और आखिर गण्य-मान्य नागरिक और रक्षक क्रमश: आते हैं। अंत में एक रथ में सुसज्जित सशस्त्र भव्य देवी आती है, जो 'विश्वमातृपन' का प्रतिनिधित्व करती है। परम्परागत रूप से इस भव्य शोभायात्रा को देखने के लिए दुनिया के हर हिस्से से अनेकों पर्यटक लोग भी आते हैं। हम इस सुन्दर शोभायात्रा का शब्दों में वर्णन नहीं कर सकते। इस भव्य परेड अथवा शोभायात्रा में सम्मिलित दर्शकों का विशाल जनसमूह मीलों तक देखा जा सकता है।

यूरोप के मेसिडोनिया राज्य में, जो पुराने समय में युगोस्लोवाकिया का एक प्रान्त था, एक कैथोलिक ईसाई घर में जन्मी 'एगनस' नाम की औरत ने भारत के हिन्दुओं को 'ईसाई मत' में धर्मान्तरण करने का वचनबद्ध संकल्प करते हुए अपना नाम 'टेरेसा' रखा। उसने साम-दाम-दंड-भेद की नीति से निरन्तर प्रयास कर बहुत सारे हिन्दू भाई-बहनों को कोलकाता में 'ईसाई मत' में परिवर्तित भी किया। विश्व के ईसाई संस्थानों ने इन ईसाई मत-परिवर्तन के सफल प्रयासों के लिए 1979 में Leader of Missionaries of Charity, Calcutta के 'टेरेसा' को 'नोबेल पारितोषिक' (The Nobel Peace Prize1979) की राशि $1.2

million US Dollars; 1,200,000.00 डॉलर से सम्मानित किया। इसके उपरान्त भी द्वेषरहित सहिष्णुता से परिपूर्ण हिन्दू समाज ने 'टेरेसा' को माँ की दृष्टि से ही देखा और माँ की पदवी भी प्रदान की। टेरेसा 'Mother Teresa' के नाम से विश्व में प्रसिद्ध भी हो गई। यह चमत्कार केवल हिन्दू धर्म का ही है, कारण–पाश्चात्य सभ्यता में अपनी माँ को माँ नहीं कहेंगे, बल्कि उसके नाम से ही बुलाएँगे। अगर नाम टेरेसा है तो टेरेसा ही कहेंगे, 'Mother Teresa' कहकर नहीं बुलाएँगे। **नारी को माता के रूप में दर्शाने का श्रेय केवल हिन्दू धर्म को ही है। इससे ज्यादा ज्वलन्त उदाहरण विश्व में कहीं भी किसी भी संस्कृति एवं सभ्यता में नहीं मिल सकता!**

हिन्दू समाज में महिलाओं को भोग की दृष्टि से नहीं देखा जाता, किन्तु उनका स्थान माँ और बहन का है। इस प्रकार की सामाजिक मान्यताएँ सम्पूर्ण विश्व में केवल हिन्दू धर्म में ही देखने को मिलती हैं।

प्रश्न–50. परिवार के बड़े बूढ़े सदस्यों अथवा माता–पिता को किस दृष्टि से देखा जाता है ?

उत्तर : विदुर नीति (4.39) के अनुसार वे लोग, जो घर के अनुभवी बड़े–बूढ़े सदस्यों की संगति में नहीं बैठते, अपरिपक्व रह जाते हैं। वृद्ध–जन अपना जीवन भोग चुके हैं और इस प्रक्रिया में उन्होंने बहुत–सा अनुभव प्राप्त किया है। इसलिए घर के बड़े–बूढ़ों को बुद्धिमत्ता का स्रोत समझा जाता है। उनका सम्मान किया जाता है और समस्याओं के समाधान में उनका अनुभव काम में लिया जाता है। संस्कृत की एक सूक्ति के अनुसार–

यं मातापितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः कर्तुं शक्या वर्षशतैरपि॥

अर्थात् 'माता–पिता अपनी संतानों के जन्म, लालन–पालन में जो कठिनाई उठाते हैं, संतान के लिए उस ऋण से उऋण

होना सौ वर्षों में भी सम्भव नहीं है।'

शतपथ ब्राह्मण और छान्दोग्य उपनिषद् माता-पिता और बड़े बूढ़े/आचार्यों के बारे में कहते हैं[1] :

मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद।

—शतपथब्राह्मण 14/5/8/2; छान्दोग्य उपनिषद् 6/14/2

जिसके माता-पिता और आचार्य उत्तम शिक्षक हैं, उनकी संतान ज्ञानवान् बनती है। प्रथम शिक्षक विदुषी माता है, द्वितीय शिक्षक विद्वान् पिता और तृतीय गुणी शिक्षक आचार्य है। इनके गुणों और उपदेशों से संतान स्वत: ही सुशील एवं शिक्षित होती हैं।

तैत्तिरीय उपनिषद् भी इस सन्दर्भ में आचार्य-मुख से निम्न उपदेश दिलाता है :

दैवपितृकार्य्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि, तानि सेवितव्यानि, नो इतराणि। यान्यस्माकꣳ सुचरितानि, तानि त्वयोपास्यानि, नो इतराणि॥

—तैत्तिरीय उपनिषद्, 7, अनु० 11 कं० 2

'सुपूज्य वृद्धजनों (देवपितृ) की सेवा-टहल में कोई कमी न आने दो। मातृ-भक्त बनो। पितृ-भक्त बनो। गुरु-भक्त बनो। अतिथि-सेवा मन से करो। जो अनिन्दित धर्मयुक्त कर्म हैं उन सत्यभाषणादि को किया करो, उनसे भिन्न मिथ्याभाषणादि कभी मत करो। जो हमारे सुचरित्र कर्म हों, उन्हीं को ही ग्रहण करो, हमारे अन्य दूषित कर्मों पर ध्यान मत दो।'

अत: माता-पिता और आचार्य की सेवा जीवन का एक अभिन्न अंग है।

साधारणतया वृद्ध-जनों की देखरेख उनके निकट सम्बन्धी करते हैं। दादा-दादी अथवा नाना-नानी अपने नाती-पोते के साथ भोजन करके सोने से पहले कहानियों का आनन्द देकर बच्चों को

---

1. स्वामी विद्यानन्द सरस्वती, सत्यार्थ भास्कर, इंटरनेशनल आर्यन फाउँडेशन, बम्बई, 1962, पृष्ठ 198 सुरक्षा और सान्निध्य की भावना देते हैं।

ज्ञान-प्राप्ति की यह एक अनुपम अद्वितीय पद्धति स्वस्थ समाज के जीवन-मूल्यों को सिखाती है और पोषित करती है। नई पीढ़ी में इन मूल्यों के प्रति ऐसी गहन भावना पैदा करती है, जो उनके अधिक अच्छे मानव बनने में सहायक होती है। अप्रत्यक्ष रूप से यह प्रक्रिया सद्व्यवहार, इतिहास व नैतिक मूल्यों की शिक्षा ही नहीं देती, बल्कि ज्ञान के प्रसार द्वारा वृद्ध होने के अनुभव की पहचान भी करवाती है।

वैज्ञानिक अध्ययन यह दर्शाता है कि वे बच्चे जिनका अपने दादा-दादी या नाना-नानी से घनिष्ठता का सम्बन्ध रहता है, अधिक शान्त और भरोसा करनेवाले होते हैं। वे घर के वृद्ध-जनों को बूढ़ा होने के कारण निकम्मे अथवा व्यर्थ नहीं समझते। हिन्दू-समाज वृद्ध लोगों को अधिक महिमामय ढंग से स्वीकार करता है, क्योंकि वे बूढ़े होने और मृत्यु की ओर अग्रसर होने की कला को समझते हैं।

प्रश्न-51. हिन्दू धर्म के अनुयायियों का समाज के प्रति दैनिक कर्तव्य क्या है ? एक हिन्दू परिवार में पड़ोसियों, मित्रों, दीन-दुःखियों और अतिथियों के साथ कैसा व्यवहार किया जाता है ?

उत्तर : हिन्दू धर्म के अनुयायियों का एक कर्तव्य है- अतिथियों का सम्मानपूर्वक स्वागत तथा सत्कार करना। 'पंच महायज्ञों' का दैनिक पालन करने का विधान और आचार-संहिता महान् मनु द्वारा मनु स्मृति (3/43-84) में निम्न रूप से दिया है :

तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः।
पंच क्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम्॥

- मनु-स्मृति 3-69

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दंवो बलिभौंतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥

मनु-स्मृति 3-70

पढ़ना-पढ़ाना, संध्योपासन करना **ब्रह्मयज्ञ;** माता-पिता आदि की सेवा-सुश्रूषा, भोजन आदि से तृप्ति करना **पितृयज्ञ;** प्रातः-सायं हवन करना **देवयज्ञ;** पशु-पक्षियों, रोगी तथा आश्रितों आदि को देने के लिए अपने भोजन में से भाग को बचाकर इनको देना **'भूतयज्ञ'** अथवा **'बलिवैश्वदेवयज्ञ',** अतिथियों को भोजन व सेवा-सत्कार से तृप्त करना **'नृ-यज्ञ'** अथवा **'अतिथि यज्ञ'** कहलाता है।

मनु ने आदेश दिया है (मनु-स्मृति 3/75-76) कि देवकर्म अर्थात् अग्निहोत्र अवश्य करें। अग्नि में घृत आदि अच्छे पदार्थों की आहुति देवें, ताकि वे पदार्थ सूक्ष्मकणों में बदलकर वातावरण में अग्नि द्वारा सर्वत्र फैल जाएँ। सूर्य की किरणों से मिलकर ये पदार्थ अपना अनूठा प्रभाव जन-समूह पर उसी प्रकार डालते हैं, जिस प्रकार सूर्य से वृष्टि तथा वृष्टि से अन्न पैदा होता है और उस अन्न से प्रजा का पालन-पोषण तथा समृद्धि होती है।

संक्षेप में 'पंच महायज्ञों' का वर्णन निम्न है :

1. **ब्रह्म यज्ञ :** वेद-ज्ञान तथा ईश्वर-ज्ञान को ब्रह्म-यज्ञ कहा गया है। वैदिक ऋचाओं द्वारा ईश्वर-स्तुति, प्रार्थना और उपासना करना ही ब्रह्म यज्ञ है। संध्या-क्रिया द्वारा ब्रह्म की अच्छी प्रकार से आराधना, उपासना और ध्यान किया जाता है। ब्रह्म-यज्ञ के दो भाग हैं—सन्ध्योपासना और स्वाध्याय। इन्हें समान रूप से करने से सम्पूर्ण दिवस शांत, प्रसन्न एवं मंगलमय व्यतीत होता है।

वैदिक ऋचाओं का भक्तिपूर्ण पठन- पाठन और गायन करना, इनके द्वारा प्रदत्त ज्ञान, प्राणायाम तथा योग द्वारा भगवान् का ध्यान करना 'ब्रह्मयज्ञ' कहलाता है।

2. **देव यज्ञ :** प्राकृतिक शक्तियों के प्रदाता, वातावरण की शुद्धता बनाए रखनेवाले दिव्य प्राणदाता को देव कहते हैं। 'देवो दानाद्वा, **दीपनाद्वा, द्योतनाद्वा, द्युस्थानो भवतीति**

वा। यो देवः स देवता', निरु.7.15'। **'देव यज्ञ ही अग्निहोत्र है' इसको हवन भी कहते हैं।** (देखें प्रश्न 30)। इसका प्रयोजन पवित्रता, स्वास्थ्य, अच्छे गुणों और बुद्धि का विकास करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'अग्निहोत्र' करते हैं, जिसमें प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग किया जाता है।

देव यज्ञ को 'अग्निहोत्र' कहते हैं, सुगन्धित पुष्टिवर्धक और रोगनाशक पदार्थ डालकर देवयज्ञ करने से वातावरण शुद्ध रहता है।

3. **पितृ यज्ञ : पान्ति पालयन्ति रक्षन्ति अन्न-विद्या-सुशिक्षा-आदि दानैः ते पितरः** अर्थात् जो अन्न, विद्या, सुशिक्षा आदि से संतानों का लालन, पालन, पोषण करते हैं, वे 'पितृ' कहलाते हैं। **देवा या पितरः; स्विष्टकृतो वै पितरः** गो॰उ॰ 1.24, 25; '**मर्त्याः पितरः** श॰ 2/1/3/4' मनुष्य ही पितर हैं, अर्थात् मृत पितर नहीं हैं।

कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा।
पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन्॥

—मनुस्मृति 3-82

मनु ने आदेश दिया—माता-पिता आदि बुजुर्गों से अत्यन्त प्रेम से प्रतिदिन श्राद्ध अथवा श्रद्धा से सेवा-शुश्रूषा, भोजन आदि कर्त्तव्य करे। सुखयुक्त सेवा से तृप्त करना 'तर्पण' तथा श्रद्धा-भाव से सेवा करना 'श्राद्ध' कहलाता है।

माता-पिता, विद्वानों और ज्ञानी ऋषियों की भली-भाँति सेवा करना तथा इन विद्वानों और अनुभवी लोगों से ज्ञान और बुद्धिमत्ता प्राप्त करना पितृ यज्ञ है।

'माता-पिता, पितामह और आचार्य आदि ही पितर कहलाते हैं। इनका यथाशक्ति श्रद्धापूर्वक सम्मान, सेवा करना ही पितृ-यज्ञ कहलाता है।

4. **अतिथि यज्ञ :** अतिथि का अर्थ है 'अ-तिथि' जो बिना

तिथि अर्थात् बिना सूचना के आता है। मनु के अनुसार (3-102 से 118)-

संप्राप्ताय त्वतिथये प्रदद्यादासनोदके।
अन्नं चैव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम्॥

—मनुस्मृति 3-96

आए हुए अतिथि के लिए व्यवहारोचित विधि के अनुसार सत्कार करके शक्ति के अनुसार आसन और जल तथा अन्न प्रदान करे।

एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः।
अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते॥

—मनुस्मृति 3-102

जो विद्वान् एक ही रात तक पराए घर में रहे तो अतिथि कहलाता है, क्योंकि नित्य नहीं ठहरता, उसका आना अनिश्चित होता है।

भुक्तवत्स्वथ विप्रेषु स्वेषु भृत्येषु चैव हि।
भुंजीयातां ततः पश्चादवशिष्टं तु दम्पती॥

—मनुस्मृति 3-116

विद्वान् अतिथियों , परिवार-जनों और सेवकों द्वारा भोजन कर लेने पर शेष बचे भोजन को पति-पत्नी खाएँ।

अतिथि की एक और परिभाषा है—'नास्ति, द्वितीय तिथि यस्य' अर्थात् जिसके दोबारा आने का भरोसा नहीं। प्रायः अतिथि एक ऋषि, योगी अथवा ऐसा विद्वान् होता है जिसका ध्येय मानवता की सेवा के लिए स्थान-स्थान घूमना है। वे लोग जो पवित्र और अच्छे हैं तथा समाज का उत्थान करने में जुटे हैं, वे अतिथिदेव की श्रेणी में आते हैं। इसलिए हिन्दू लोग मनु के निर्देश का पालन करते हुए अतिथियों के प्रति बहुत मान-मर्यादा और सेवा-सत्कार का भाव रखते हैं।

ऐसे विद्वान्, त्यागी, और कल्याणकारी अभ्यागतों का सत्कार

करना ही 'अतिथि-यज्ञ' कहलाता है।

5. बलिवैश्वदेव यज्ञ : इसका दूसरा नाम 'भूतयज्ञ' भी है। इसका अर्थ है दीन-हीन, आश्रित लोगों, और निराश्रय पशु-पक्षियों को अपने भाग में से निकालकर उनको अन्न देना अथवा देखभाल करना। केवल मानव ही सम्पूर्ण प्राणियों के पालन करने की क्षमता रखता है, निर्धन और अनाथ लोगों की सहायता और सेवा-सुश्रूषा कर सकता है। मनु ने यहाँ तक लिखा है :

देवताऽतिथिभृत्यानां पितृणामात्मनश्च यः।
न निर्वपति पंचानामुच्छ्वसन्न स जीवति॥

—मनुस्मृति 3 72

जो गृहस्थी देवताओं को हवन के रूप में, अतिथियों को अतिथि-यज्ञ के रूप में, आश्रितों को भूत या बलिवैश्वदेव यज्ञ के रूप में, माता-पिता-पितामह आदि के लिए पितृयज्ञ के रूप में, और अपनी आत्मा के लिए ब्रह्मयज्ञ के रूप में—इन पाँचों के लिए उनके भागों को नहीं देता है अर्थात् पाँच दैनिक महायज्ञों को नहीं करता, वह साँस लेते हुए भी वास्तव में नहीं जीता अर्थात् मरे हुए व्यक्ति के समान है।

मुख्यतः निराश्रित जनों और प्राणियों की सेवा बलिवैश्वदेव यज्ञ है। समाज-सेवा ही बलिवैश्वदेव यज्ञ का मुख्य लक्ष्य है।

अगर हिन्दू समाज के लोग 'बलिवैश्वदेव यज्ञ' को दैनिक जीवन में अपनाते तो भारत के हिन्दू लोगों का अन्य 'मत-मजहब और रिलिजन' में धर्म-परिवर्तन नहीं होता। समाज के गरीब, पिछड़े, दीन-हीन, दलित और आश्रित लोगों की सुचारु रूप से पूर्ण देखभाल तथा समाज-सेवा होती तो ये निराश्रित हिन्दू लोग अपने वंश-परम्परागत धर्म को कभी न छोड़ते और न कभी धर्म-परिवर्तन करते।

प्रश्न-52. नीतिशास्त्र की पुस्तकें कौन-सी हैं ?

उत्तर : नीतिशास्त्र की मुख्यत: तीन निम्न पुस्तकें हैं :

1. विदुर नीति : महाभारत-युद्ध के समय बुद्धिमान् विदुर ने नीति की व्याख्या की है। वह 'विदुर नीति' के नाम से प्रसिद्ध है।

2. भर्तृहरि नीति : महान् राजा विक्रमादित्य के राज्य-काल 400 ईसा-पूर्व, उनके बड़े भाई भर्तृहरि ने जो एक महान् विद्वान थे, अनेक पुस्तकें लिखीं। उन पुस्तकों में सबसे प्रसिद्ध पुस्तक है 'भर्तृहरि नीतिशतकम्'। इस पुस्तक में तीन विषयों पर एक-एक सौ श्लोक हैं, इस कारण इसका नाम शतकम् है।

3. चाणक्य नीति : राजा विक्रमादित्य के प्रधानमंत्री चाणक्य थे। कुछ इतिहासकारों ने राजा चन्द्रगुप्त मौर्य को विक्रमादित्य माना है जो सत्य प्रतीत नहीं होता। बाद के अध्यायों में इसके पूर्ण तथ्य और विवरण देंगे। प्रधानमंत्री चाणक्य ने राजनीति, विज्ञान, अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र पर कई पुस्तकें लिखीं। इनमें 'चाणक्य नीति' नैतिकता का विवेचन करती है।

प्रश्न-53. 'विदुर नीति' का एक उदाहरण दीजिये!

उत्तर : विदुर ने तर्क द्वारा धृतराष्ट्र को समझाने का प्रयत्न किया कि 'वह पांडवों के भाग में आनेवाली भूमि, पांडवों को प्रदान करे'। इस दौरान हुए तर्क-वितर्क को ही 'विदुर नीति' कहा जाता है।

न्यायागतस्य द्रव्यस्य बोद्धव्यौ द्वावतिक्रमौ।
अपात्रे प्रतिपत्तिश्च पात्रे चाप्रतिपादनम्॥

—विदुर नीति 1.57

'उचित ढंग से अर्जित किए हुए धन के केवल दो दुरुपयोग हो सकते हैं—अयोग्य व्यक्तियों को उपहार देना और योग्य व्यक्तियों को न देना।'

प्रश्न-54. 'भर्तृहरि नीति' का कोई उदाहरण दीजिए!

उत्तर : भर्तृहरि ने नीति, शृंगार एवं वैराग्य पर सौ-सौ श्लोकों से युक्त शतकत्रय की रचना की है। नीति-शतक से उद्धृत उनका एक नीति-श्लोक है, जिसमें महात्मा के स्वभाव का वर्णन है—

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा,
सदसि वाक्पटुता, युधि विक्रमः।
यशसि चाऽभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ,
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्॥

—भर्तृहरि नीति शतकम् 63

'विपरीत या कठिन समय में भी धीरज न छोड़ना, अपना उत्थान होने पर भी क्षमाशील और दयावान् होना, अपनी रक्षा करने में पूर्ण समर्थ रहना, यशवर्धक कामों में रुचि होना, और वैदिक ज्ञान-ग्रन्थ पढ़ने की लालसा—यह सब महान् आत्माओं के स्वभाव में सहज ही होता है।

प्रश्न-55. चाणक्य-नीति का कोई उदाहरण दीजिए!

उत्तर : राजा चन्द्रगुप्त के विस्तृत साम्राज्य का निर्माण करने का मुख्य श्रेय चाणक्य को प्राप्त है। चाणक्य एक महान् विद्वान् और लेखक थे। उन्हें आचार्य अर्थात् महान् गुरु की पदवी दी गई है। राजनीतिशास्त्र पर लिखी उनकी पुस्तकें आज भी भारतीय विश्वविद्यालयों में स्नातक और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में पढ़ाई जाती हैं। हिन्दू परिवार के स्वरूप का वर्णन वे इस प्रकार करते हैं :

सत्यं माता, पिता ज्ञानं, धर्मो भ्राता, दया सखा।
शान्तिः पत्नी, क्षमा पुत्रः, षडैते मम बान्धवाः॥

—चाणक्य नीति दर्पण 12.10

'सत्य मेरी माता है, ज्ञान मेरा पिता है, धर्म मेरा भाई है, दया मेरा मित्र है, शान्ति मेरी पत्नी है, और करुणा मेरा पुत्र है। ये छः गुण ही मेरे स्वजन हैं।'

चाणक्य ने एक हिन्दू परिवार के परस्पर व्यवहार का उचित

चित्रण किया है।

प्रश्न-56. एक सामान्य हिन्दू परिवार के नैतिक मूल्यों के कुछ उदाहरण दीजिए।

उत्तर : एक सामान्य हिन्दू के नैतिक सिद्धान्तों का वर्णन निम्नलिखित प्रसिद्ध संस्कृत लोकोक्ति से प्रस्तुत करते हैं :

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

'भगवान की कृपा से सभी प्राणी सुखी हों, संसार में सभी नीरोग हों, फूलें-फलें, सभी का कल्याण हो और किसी को भी कोई दुःख अथवा कष्ट न हो।'

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

'यह मेरा अपना है और यह पराया है—ऐसा केवल संकीर्ण मन वाले मनुष्य सोचते हैं। जिनका चरित्र उदार है, मन विशाल है, उनके लिए तो सारा विश्व ही उनका परिवार है।'

प्रश्न-57. ऐसी कौन-सी पुस्तक है जो संसार के सभी धर्म-ग्रंथों का तुलनात्मक अध्ययन करके विषयवस्तु का पूरा ज्ञान देती है ?

उत्तर : कलकत्ता में 1868-72 ई॰ वर्षों में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने धर्मों और धर्म-पुस्तकों पर कुछ विस्तृत वक्तव्य दिये। इन भाषणों का आयोजन नोबेल पुरस्कार विजेता श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के पिता श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा किया गया था। श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने स्वामी जी से आग्रह किया कि वे अपने भाषणों को पुस्तकों का रूप दें, ताकि वे लोग जो भाषणों में नहीं आ सके उन्हें भी ज्ञान मिल सके। श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर की प्रार्थना स्वीकार करके स्वामी दयानन्द सरस्वती ने **सत्यार्थ प्रकाश** लिखना आरम्भ किया, जिसका अर्थ है सत्य का प्रकाश या सत्य-दर्शन। इस पुस्तक में बड़े तार्किक और न्यायपूर्ण ढंग से विश्व के सभी धर्मों और धर्म-ग्रंथों की तुलना की गई है। यह पुस्तक पहली

बार ई० वर्ष 1882 में प्रकाशित हुई थी।

फ्रांस की एक महिला लुईस जैकोलियट ने 1870 में विभिन्न धर्मों पर कई पुस्तकें लिखी थीं। उनमें से एक पुस्तक का नाम है –*La Bible Dans L' Inde - 'Hindu Origins of Christian and Hebrew Revelations'.* इस पुस्तक में बहुत रुचि से रिलिजन जैसे क्रिश्चियन तथा यहूदी लोगों के आचार-विचार, रहन-सहन के नियमों को हिन्दू धर्म से तुलनात्मक अध्ययन करके लुईस जैकोलियट ने प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया कि उनकी आध्यात्मिक उत्पत्ति का स्रोत 'हिन्दू धर्म' ही है। 'हिन्दू धर्म' के अनुयायियों के लिए यह पुस्तक विशेष पठनीय है। इसका भी हिन्दी-अनुवाद हम भविष्य में करेंगे, ऐसी हमारी योजना है।

प्रश्न-58. हिन्दू धर्म के अनुसार किस प्रकार के आहार को उचित और स्वास्थ्यवर्धक बताया गया है ?

उत्तर : 'आयुर्वेद' वैदिक आयुर्विज्ञान की उपचार-कला का एक अनुपम ग्रंथ है। आयुर्वेद स्वास्थ्यप्रद दीर्घ आयु की कामना तथा आरोग्य रहने के लिए निम्न प्रकार के आहार की परिभाषा प्रदान करता है :

1. आहार : सात्त्विकता अर्थात् शान्ति, पवित्रता और शुद्ध-गुणों के लिए स्वास्थ्यवर्धक सात्त्विक भोजन करना ही उचित है। दूध और शाकाहारी भोजन अच्छा स्वास्थ्य और दीर्घ आयु देता है। यदि दूध पाच्य नहीं है तो दही, पनीर और छाछ का प्रयोग किया जा सकता है, क्योंकि इनमें दुग्ध की मिठास अर्थात् लेक्टोज (Lactose-sugar) नहीं होती। शाकाहारी भोजन में सभी प्रकार के प्रोटीन अच्छी मात्रा में मिलते हैं। फलियाँ, सभी तरह की दालें, बादाम, अखरोट, नारियल, काजू आदि सूखे मेवे प्रोटीन के बहुत अच्छे स्रोत हैं, पर न मिलने पर मूँगफली प्रोटीन का एक उत्तम साधन है। ये सभी वस्तुएँ न केवल पर्याप्त प्रोटीन ही देती हैं, अपितु साधारण आय वाले लोग भी इन्हें आसानी से प्राप्त करने

में समर्थ हैं। हरे शाक और सब्जियाँ एंटी-ऑक्सीडैंट, विटामिन तथा खनिज भी प्रचुर मात्रा में प्रदान करते हैं। ये शरीर की कोशिकाओं की स्वतंत्र 'रेडिकलों' से रक्षा करते हैं जो कई प्रकार के रोग पैदा करते हैं। 'लाइकोपीन' एक ऐसा एंटी-ऑक्सीडैंट है जो लाल टमाटर, गुलाबी ग्रेप-फ्रूट, संतरा और तरबूज में भरपूर मात्रा में मिलता है। हाल में हुए परीक्षणों से पता चला है कि एंटी-ऑक्सीडैंट अधिकतर रक्त-चाप, हृदय-रोग, मस्तिष्क व्याधियों और कैंसर से सुरक्षा प्रदान करते हैं।

हिन्दू नैतिक सिद्धांतों के अनुसार भोजन उचित रीति से प्राप्त किया जाना चाहिए और इसके लिए किसी भी जीव या पशु को कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिए। आधुनिक विज्ञान के अनुसार यह बात सिद्ध है कि मांसाहार हृदय-रोग, कैंसर और रक्त-चाप आदि गंभीर रोगों का एक बड़ा कारण है। पशुओं का मांस, अंडे, मुर्गे और समुद्री जीव जिन्हें समुद्री भोजन कहा जाता है, के खाने से हृदय-रोग होता है, क्योंकि इन आहारों में 'कोलैस्ट्रोल' और 'ट्राइगलिसराइड्स' की प्रचुर मात्रा होती है जैसा कि आधुनिक उपचार-विज्ञान में की गई शोध ने सिद्ध किया है।

केवल संयुक्त राज्य अमेरिका में ही प्रतिवर्ष 'अरबों' पशु मानव-आहार के लिए मारे जाते हैं। पशुओं को एंटीबायोटिक खिलाए जाते हैं ताकि वे विशेष मोटे और बड़े हों। परिणामस्वरूप ऐसे Resistant Bacteria अथवा अतिसूक्ष्म-अणुजीव जो आधुनिक दवाओं से भी नहीं मर सकते, उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसे पशुओं का मांस खानेवाले लोगों के शरीर में Resistant Bacteria के द्वारा रोग शीघ्र पनपते हैं और मृत्यु की संभावना बढ़ती है। इनको आरोग्य करने में अमेरिका प्रतिवर्ष पाँच अरब डॉलर व्यय करता है।

पेय पदार्थ : ऐसे पेय जिनमें मदिरा, भांग, अफीम, व्यसन वाले पदार्थ रहते हैं, स्वास्थ्य और आरोग्य जीवन के शत्रु हैं।

Alcohol या मद्य, नशा उत्पन्न करता है, जिससे निद्रा में बाधा पड़ती है, मानसिक स्थिति बिगड़ जाती है। शराब उचित-अनुचित के ज्ञान को भी नष्ट करती है, शरीर की विभिन्न प्रक्रियाओं को हानि पहुँचाती है। थोड़ी मात्रा में भी शराब पीने से कोई भी रोग मिटानेवाला लाभ नहीं मिलता, बल्कि शरीर को विभिन्न प्रकार से हानि ही पहुँचाती है। इसी तरह, सभी उत्तेजक और दृष्टि-भ्रम पैदा करनेवाले पदार्थ या तम्बाकू आदि नशीले पदार्थ शरीर के लिए अति हानिकारक हैं। इनसे बचना भी अत्यन्त आवश्यक है। फिर भी तम्बाकू और मदिरा बनानेवाले उद्योग, धन की बड़ी-बड़ी राशियाँ फिल्मों और खेल-आयोजनों के द्वारा इन वस्तुओं के विज्ञापन पर खर्च करते हैं।

आधुनिक चिकित्सा-पद्धति भी उचित भोजन, दूध, शाकाहार, नियमित व्यायाम, और हठयोग की सराहना करती है। शराब और धूम्रपान जैसी नशीली वस्तुएँ चाहे कानूनी हों अथवा गैरकानूनी, स्वास्थ्य के लिए सभी हानिकारक सिद्ध होती हैं।

महान् कानून-रचयिता मनु (2.174) ने बड़े स्पष्ट शब्दों में मांसाहार और नशीले पदार्थों से दूर रहने को कहा है।

प्रश्न-59. हिन्दू समाज के महान् ऋषियों, महात्माओं, वीरों और वीरांगनाओं के नाम दीजिए जो 'आदर्श' समझे जाते हैं ?

उत्तर : सभी आदर्श पुरुषों एवं महिलाओं का वर्णन करना इस पुस्तक की शक्ति से परे है, अत: केवल कुछ ही मुख्य नाम नीचे दिए गए हैं :

अति प्राचीन समय के ध्रुव और प्रह्लाद; सतयुग के राजा हरिश्चन्द्र; त्रेता युग के मर्यादा पुरुषोत्तम राम; द्वापर के योगेश्वर श्रीकृष्ण; कलियुग के राजा भर्तृहरि, राजा विक्रमादित्य, और चाणक्य; गौतम बुद्ध; महावीर स्वामी; राजा अशोक; कवि तिरुवल्लुवर; आदि-शंकराचार्य; महाकवि कालिदास; कम्बन; बाबा रामदेव; वैष्णव आचार्य रामानुज, माधव, निंबा, वल्लभ और चैतन्य

महाप्रभु; महाराणा प्रताप; भामाशाह; मीराबाई; तुलसीदास; कबीर; सूरदास; सिक्ख-गुरु नानक से गुरु गोविन्द सिंह; छत्रपति शिवाजी; स्वामी दयानन्द सरस्वती; स्वामी योगेश्वरानन्द; स्वामी रामतीर्थ, सुभाष चन्द्र बोस, स्वामी श्रद्धानन्द; लाला लाजपत राय; महात्मा गांधी; महर्षि रमण, डॉ० क०वा० हेडगेवार; योगी अरविन्द, स्वामी प्रभुपाद और श्री सुशील मुनि।

आज भी थाईलैंड और लाओस जैसे पूर्वी देशों में बौद्ध लोग 'सिंथा माता' की पूजा करते हैं। सिंथा माता उनके लिए समस्त मानवता का जीवन्त आदर्श है। इंडोनेशिया के मुस्लिम, भारत के हिन्दू और पूर्वी देशों के बौद्ध भी सिंथा-माता (श्रीराम की पत्नी का अपभ्रंश नाम)अथवा सीता-माता के आशीर्वाद की कामना करते हैं।

प्रश्न-60. हिन्दुओं के कौन-से मुख्य उत्सव हैं ?

उत्तर : हिन्दुओं के मुख्य उत्सव निम्न हैं :

1. दीवाली या दीपावली सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण उत्सव है। इस उत्सव को मनाने के बहुत सारे कारण हैं। यह त्यौहार नये अन्न के आगमन का प्रतीक है। किसान अपनी नई उपज का आनन्द मनाते हैं। व्यापारी लोग अपनी पुरानी बहियाँ और हिसाब-किताब बन्द करके नये खाते, नये आर्थिक वर्ष के लिए खोलते हैं। व्याप्त लोककथा के आधार पर सारा हिन्दू समाज शीत-ऋतु के आरम्भ में विजयी श्रीराम का पुन: घर लौट आने का उत्सव दीवाली मनाता है। अनेक विद्वान् इस विचारधारा से सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि श्रीराम के पूर्व भी दीवाली मनाई जाती थी। दीपावली के अवसर पर लोग मिट्टी के दीये या दीप जलाते हैं। यह अंधकार पर प्रकाश की विजय का भी प्रतीक है, इसलिए इसे 'दीपों का त्यौहार' दीवाली या दीपावली कहते हैं। दीपों के सुनहले प्रकाश में चमकते हुए घर लोगों के उत्साह और उमंग को दर्शाते हैं और इस तरह यह उत्सव बुराई पर दैवी

शक्तियों की विजय का प्रतीक है। श्रीराम की रावण पर विजय के अतिरिक्त इसी दिन श्रीकृष्ण ने 'प्राग्ज्योतिषपुर' जो आज के भारत का 'असम-राज्य' कहलाता है, के अत्याचारी राजा नरकासुर का वध करके प्रजा को अत्याचार से मुक्ति दिलाई थी, इसकी खुशी में भी दीवाली मनाते हैं।

दीवाली एक ऐसा सार्वभौम पवित्र पर्व है जिसे हिन्दू, जैन, सिख सभी मनाते हैं। यह त्यौहार पारिवारिक प्रेम और स्नेह के बन्धनों को सुदृढ़ करता है।

2 विजयादशमी : यह त्यौहार दीपावली से तीन सप्ताह पहले मनाया जाता है। यह राम-रावण युद्ध का दसवाँ दिन था, जब श्रीराम ने रावण का वध करके सीता को मुक्त किया और लंका को रावण के एकछत्र राज्य से छुटकारा दिलाया। विजयादशमी का अर्थ है—दसवें दिन पर विजय।

3. श्रावणी, उपाकर्म, ऋषि-तर्पण या रक्षाबन्धन : इस उत्सव के द्वारा श्रावण मास का स्वागत किया जाता है, क्योंकि इसके साथ ही वर्षा ऋतु जिसे 'चौमासा' भी कहा जाता है, आरम्भ हो जाता है। चौमासे के समय में सभी ज्ञानी-ध्यानी और महात्मा नगरों में आ जाते हैं और सारे वर्षा-काल, चार मास तक, अपने भीतर नई शक्ति या नवजीवन प्राप्त करने, उपदेश देने, स्वाध्याय करने और धर्म-ग्रन्थों का अध्ययन करने और कराने में लगे रहते हैं।

क्योंकि यह सब समाज के सभी वर्गों को साथ लेकर किया जाता है, इसलिए इस उत्सव को 'उपाकर्म' कहते हैं अर्थात् निकट लाना। इस कारण से लोगों के लिए विद्वानों, मुनियों और महात्माओं के लाभकारी प्रवचन सुनना संभव होता है। इस त्यौहार को ऋषि-तर्पण भी कहा जाता है। इस दिन उन विद्यार्थियों के लिए जो पाठशाला जाना प्रारम्भ करनेवाले हैं, विशेष रीतियाँ निभाई जाती हैं। इनमें से एक का नाम है 'यज्ञोपवीत'। एक और प्राचीन

त्यौहार जो भाई-बहन के गहरे प्रेम-बंधन को सुदृढ़ और शक्तिशाली बनाता है, उसे भी अत्यन्त प्रेम से इसी दिन मनाया जाता हैं। इस दिन बहन अपने भाई की दाईं कलाई पर वात्सल्य-बंधन का प्रतीक 'मौली' अथवा एक 'रंगीन सूती डोरी' जिसको 'रक्षाबन्धन या राखी' कहते हैं, बाँधती है। इस प्रकार 'रक्षाबंधन' भाई को स्मरण करवाता है कि बहन की रक्षा करना उसका कर्तव्य है।

4. होली : यह वसन्तु ऋतु का उत्सव है जो पके अनाज की कटाई के आनन्द और सन्तोष को व्यक्त करता है। यह रंगों-भरा त्यौहार जी-भरकर हुल्लड़ मचाने अथवा आमोद-प्रमोद का अवसर देता है। शाम के समय लोग एक बड़ा लकड़ी का ढेर या अलाव जलाते हैं। इसकी आग में नये-नये कटे अनाज, गेहूँ या चने की बालियाँ भूनकर खाते हैं। अगले दिन 'दुलहैन्डी' होती है। लोग एक-दूसरे पर लाल, हरे, नीले, पीले रंग पानी में घोलकर या पाउडर के रूप में जिसे 'गुलाल' कहते हैं, हर्ष से फेंकते हैं। रंगों से वसन्तु ऋतु का स्वागत करना ही होली है। इसे 'फाल्गुन' या 'फगवा' भी कहा जाता है।

होली के पश्चात्, हिन्दू नव वर्ष चैत्र मास से आरम्भ होता है। हिन्दू नव वर्ष को नवसम्वत्सर अथवा युगाब्द भी कहते हैं। हिन्दू नव वर्ष के प्रथम दिन अथवा प्रथम तिथि को प्रतिपदा या पड़वा कहते हैं। नये वर्ष के उत्सव को आंध्र प्रदेश और कर्नाटक में युगादि, महाराष्ट्र तथा तमिलनाडु में गुड़ी पाड़वा, और सिन्ध में चेति चंद कहते हैं। विभिन्न क्षेत्रों में अन्य नामों से भी नव वर्ष मनाया जाता है।

यह त्यौहार एक बहुत महत्त्वपूर्ण और सफल सामाजिक प्रयोग है, जिसके द्वारा समाज के सभी वर्ग एक-दूसरे के निकट आते हैं। सब प्रकार के भेद-भाव की सीमाएँ, चाहे सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक या अन्य प्रकार की हों, लुप्त हो जाती हैं। इस प्रकार का सामाजिक प्रयोग मानव-इतिहास में अद्वितीय है।

होली का उत्सव बुराई के ऊपर अच्छाई की विजय से जुड़ा हुआ भी है। एक दन्त-कथा के अनुसार राजा हिरण्यकश्यप की बहन होलिका को यह वरदान मिला हुआ था कि वह आग में से बिना जले जीवित बाहर आ सकती है। अपने भाई हिरण्यकश्यप की इच्छा को पूरी करने के लिए उसने प्रह्लाद को अपनी गोद में लेकर अग्नि में प्रवेश किया, पर भस्म हो गई। संभवतया, वह निर्दोष प्रह्लाद को आग से बचाना चाहती थी और इसके लिए उसने अपनी आहुति दी। अन्ततः हिरण्यकश्यप नरसिंह (जो आधा नर और आधा सिंह है) द्वारा मारा गया और प्रह्लाद के राजा बन जाने से राज्य में सुख-शान्ति लौट आई। लोगों को हिरण्यकश्यप की क्रूरता से छुटकारा मिला और इस कारण से होली का उत्सव मनाया जाने लगा।

श्री एच्वी॰ शेषाद्रि कहते हैं– 'होली का उत्सव यज्ञ का प्रतीक है जिसमें सारी शारीरिक इच्छाएँ और वृत्तियाँ भेंट की जाती हैं। यह पवित्र और आध्यात्मिक अग्नि हमारे अन्तःकरणों में ज्वलंत रहती है।
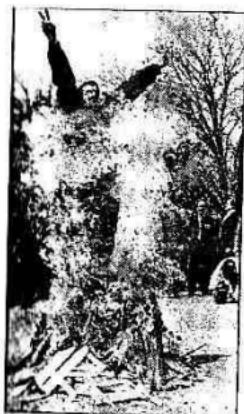
Symbolically burning away impurities, a Kurd jumps over a traditional Nowruz bonfire Wednesday in Ankara. The spring festival of Nowruz has been celebrated for 4,000 year in Central Asia.

BURHAN OZBILICI/Associated Press

मध्य एशिया में अनेक देशों के लोगों ने चाहे युद्धों अथवा अन्य परिस्थितियों के कारण अपना धर्म-परिवर्तन भले ही कर लिया हो, परन्तु होली के यज्ञोत्सव का प्रतीक Spring Festival 'नवरोझ अथवा नवरुझ' आज तक उसी तरह से मनाते हैं, जैसे उनके वैदिक पूर्वज लोग मनाया करते थे। किंवदंती के अनुसार राजा हिरण्यकश्यप भी वहीं मध्य एशिया का ही तो था। रोम-इटली की राजधानी के मुख्य संग्रहालय में नरसिंह की आदमकद से भी विशाल मूर्ति जो 4000 वर्षों पुरानी है, यह मध्य एशिया से ही खुदाई में प्राप्त हुई थी, इसी किंवदंती की पुष्टि करती है।

चित्र में अंकारा - टर्की देश के कुर्द लोग नवरोझ अथवा नवरुझ (नवरोज़ का अपभ्रंश) होली यज्ञोत्सव के प्रतीक Spring Festival को पिछले 4000 वर्षों से मनाते आ रहे हैं।

अन्य महत्त्वपूर्ण उत्सव निम्न हैं :

1. मकर संक्रांति, पोंगल : यह उत्सव सूर्य के उत्तरी गोलार्द्ध की ओर प्रस्थान करने अथवा 'उत्तरायण' होने के कुछ दिनों पश्चात् मनाया जाता है। इस दिन से सूर्य मकर राशि में संक्रमण करता है। यह पर्व हमेशा 14 जनवरी को होता है। 'मकर संक्राति' सारे भारत में 'महाव्रत' के नाम से मनाई जाती है। पंजाब में यह त्यौहार लोहड़ी के नाम से जाना जाता है। असम में इसे भोगली-बिहु, बंगाल में 'नवान्नः', आन्ध्र प्रदेश में 'भोगी', तमिलनाडु में 'पोंगल' और केरल में 'पूरम' कहा जाता है। यह खेती की नई फसल का आनन्द मनाने का त्यौहार है। उत्तर भारत में तिल वाली रेवड़ियाँ-गज़क जैसी मिठाइयाँ बाँटी जाती हैं। दूसरे प्रान्तों में 'खिचड़ी' जो चावल और मूँग-दाल के मिश्रण से बनती है, खिलाई जाती है।

सूर्य और पृथिवी के विभिन्न गति चक्र के संदर्भ से ऋतुओं का प्रादुर्भाव

In truth, the only unique happening is that day and night are about the same length today. From this day forward, sunshine will exceed darkness, until the summer solstice on June 20-the longest day of the year.

2 शिवरात्रि : शिव-रात्रि शिव के जन्म दिन का उत्सव है। इस दिन को ऋषिबोध-दिवस भी कहते हैं। इस दिन स्वामी दयानन्द सरस्वती को सच्चे शिव का बोध हुआ। जब उन्होंने शिव मन्दिर में शिवलिंग* पर चढ़े चूहों को देखा और शिव-मूर्ति की असमर्थता को देखकर मूर्ति-पूजा से ग्लानि हो गई थी, तब सच्चे शिव की खोज में अपना सब न्योछावर कर प्रभु-खोज में निकल पड़े। स्वामी विरजानन्द से साक्षात्कार कर अपने आपको भारत माँ को समर्पित कर, आर्यसमाज की स्थापना कर, स्वराज्य की आधारशिला रख, सच्चे शिव के आत्म-प्रकाश से ही स्वयं का तथा सम्पूर्ण भारतवासियों का कायाकल्प किया।*

---

* गौतम ऋषि ने न्याय दर्शन में 'मन' को पहचानने के लिए लिखा है : **युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम्।** (1/16) अर्थात् एक-साथ अनेक ज्ञानों की उत्पत्ति का न होना ही 'मन' का लिङ्ग चिह्न-लक्षण है। प्रत्येक भाषा में एक ही शब्द का भिन्न-भिन्न अवस्था में भिन्न-भिन्न अर्थ होता है। गौतम ऋषि के अनुसार यहा पर लिंग का अर्थ 'चिह्न' अथवा 'लक्षण' हुआ। इसी प्रकार शिव लिंग* का अर्थ शिव का 'चिह्न' (Symbol) होता है।

शिव उस कल्याणकारी परमात्मा का नाम है जो मनुष्यों को शांति प्रदान कर सफलता के मार्ग की ओर अग्रसर करता है, जैसा कि निम्न वेदमंत्र से ज्ञात होता है :

ओ३म् नमः शम्भवाय च मयोभवाय च। नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च।।

—यजुर्वेद 16/41

शांति एवं सुखस्वरूप, शांति एवं सुखप्रदाता, कल्याणस्वरूप, पवित्रस्वरूप और मोक्षप्रदाता परमात्मा को हमारा नमस्कार! कल्याण करनेवाले परमात्मा को बारम्बार नमस्कार!

उस कल्याणस्वरूप परमात्मा का चिह्न ज्योतिःपुञ्ज है, जो 'मन' को ज्ञान दे, ताकि शरीर में विद्यमान आत्मा में प्रकाश हो और हम सभी ज्ञान द्वारा शांति से कल्याण के पथ पर बढ़ें। ज्योतिःपुञ्ज ही सच्चे शिव का द्योतक है, न कि जननेन्द्रियरूपी लिंग, जैसा कि साधारण जन समझते हैं। जननेन्द्रियरूपी लिंग तो केवल वाममार्गी लोगों* ने हिन्दू धर्म को भ्रष्ट करने के उद्देश्य से प्रयुक्त किया था। रुई से बनी बाती को तेल अथवा घी के दीये के बीच प्रज्वलित कर उसे दीये के बीच में खड़ा कर दिया जाए तो वह ज्योतिःपुञ्ज का प्रतिनिधित्व करेगा। यह ज्योतिःपुंज ही सच्चे शिव का द्योतक है, न कि जननेन्द्रियरूपी लिंग का। पाठकगण अब स्वयं ही इस पहेली पर विचार करें।

3. राम नवमी : यह 'मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम' का जन्मोत्सव है। 'रामायण' श्री राम की जीवन-कथा है। कई भाषाओं में बहुत-सी पुस्तकें और शोध-ग्रन्थ 'रामायण' पर लिखे गए हैं, पर केवल वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण ही मौलिक और पूर्ण प्रामाणिक है। ऋषि वाल्मीकि श्रीराम के समकालीन थे और उन्होंने पूरी राम-गाथा

---

* 'वाममार्गी मत' का वर्णन पाठक इस पुस्तक के छठे अध्याय में वर्णित 'सत्यार्थ प्रकाश' के अन्तर्गत देखें।

को श्रीराम के राजतिलक पर पढ़कर सुनाया था, वही गाथा कालान्तर में रामायण कहलाई।

4. बैशाखी : पंजाब में बैशाखी, बंगाल में बौसाक कहते हैं। इस दिन से खेतों में पके अनाज की कटाई आरम्भ होती है। हिन्दुओं और सिक्खों के लिए यह दिन विशेष महत्त्व रखता है क्योंकि बैशाखी के दिन ही गुरु गोविन्द सिंह जी ने मुसलमानों के अत्याचारों से हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए 'खालसा पंथ' की स्थापना, मार्च 30, सन् 1699 को की थी। बैशाखी उत्सव इंडोनेशिया और थाईलैंड जैसे सुदूर-पूर्व के देशों में भी मनाया जाता है। यह नई फसल के तैयार होने का एक महत्त्वपूर्ण त्यौहार है। इसे अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग ढंग से भी मनाते हैं।

5. जन्माष्टमी : यह श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव है। योगेश्वर श्रीकृष्ण 'महाभारत' के केन्द्रीय महानायक हैं। उन्होंने अपने उपदेश से अर्जुन में इतनी शक्ति और वीरता भर दी कि वह कौरवों के विरुद्ध अपने अधिकारों की रक्षा करने में सफल हुआ। जगद्विख्यात 'भगवद् गीता' में वर्णित श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिया गया उपदेश हिन्दू जीवन-दर्शन और आध्यात्मिकता को पूरी तरह दर्शाता है।

प्रश्न-61. स्वर्ग और नरक वास्तव में क्या हैं ?

उत्तर : इस प्रश्न पर अपनी माता देवाहुति से विचार-विमर्श करते हुए आचार्य कपिल भागवत पुराण 3.20.26 में कहते हैं, 'यह स्वर्ग और नरक इसी पृथिवी पर हैं। आप अपने कष्ट को नरक में होने जैसा समझ सकती हैं।' अतः मनुष्य के मस्तिष्क की उपज के कारण ही स्वर्ग और नरक की काल्पनिक उत्पत्ति की गई। मृत्यु होने पर सामान्य जन के दुःखी मन को सांत्वना देने के लिए 'यह कहकर कि जीवात्मा अब स्वर्ग में वास करती है', मानसिक व्यथा सहने व शांति बनाए रखने में स्वर्ग की कल्पना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान करती है।

इसी तरह समाज को हानिकारक अथवा कष्टमय कार्यों से

बचाने हेतु दंड की व्यवस्था के काल्पनिक रूप हेतु 'नरक' की उत्पत्ति की गई। 'स्वर्ग और नरक' केवल प्रतीकात्मक शब्द हैं।

चाणक्य नीति 27.15 में कहा है, 'यदि गृहस्वामिनी का चरित्र श्रेष्ठ है, वह अच्छे स्वभाव वाली है, साथ निभाती है तो सम्पूर्ण घर सम्पन्न होता है, बच्चे शिक्षित, अनुशासित और सफल होते हैं, तो स्वर्ग के सुख भी इस परिवार के सुख-आनन्द से बढ़कर नहीं हैं।'

आध्यात्मिक अनुभव, जिससे अज्ञान लेश-मात्र भी नहीं रहता अथवा परमानन्द की स्थिति प्राप्त होती है, वही स्वर्ग है; जो इसके विपरीत है वह नरक कहलाता है। जो नरक है, वह पतन और दुःख की मानसिक अवस्था है जिसमें सुख, शान्ति और ऐश्वर्य का पूर्ण अभाव है।

सुगम भाषा में कहा जा सकता है कि यदि किसी मनुष्य का जीवन शान्तिमय, आवश्यक पदार्थों से पूर्ण और सुखी है, तो वह स्वर्ग में है। इसके विपरीत स्थिति होने पर उसका जीवन नरक है। स्वर्ग और नरक की प्रचलित कहानियाँ संसार के सुखों और दुःखों को प्रतीकात्मक रूप प्रदान करती हैं। 'स्वर्ग और नरक' जीवन की मानसिक अवस्थाएँ हैं।

प्रश्न-62. पुनर्जन्म क्या है ?

उत्तर : पुनर्जन्म का अर्थ है आत्मा का फिर से किसी शरीर में पुनः प्रवेश करना अर्थात् नया जन्म लेना। आत्मा शाश्वत और अमर है। जब किसी की मृत्यु होती है तो आत्मा उसकी देह छोड़कर चली जाती है। इस प्रकार आत्मा जब तक मनुष्य जीता है, तब तक ही शरीर में रहती है। आत्मा के किसी दूसरी देह में प्रवेश करने की प्रक्रिया को ही पुनर्जन्म कहते हैं। यह आत्मा के विकास की एक निरन्तर प्रक्रिया है और तब तक चलती रहती है जब तक आत्मा परमात्मा को पूर्ण रूप से समझ नहीं लेती और परमानन्द को प्राप्त नहीं कर लेती। तब आत्मा पुनर्जन्म के चक्र से मुक्त हो

जाती है। इसी को **'मोक्ष'** कहते हैं। मोक्ष की प्राप्ति मानव के शुभ कर्मों पर निर्भर करती है (देखिए प्र० क्र० 64)।

आत्मा द्वारा नई देह में प्रवेश करना पुनर्जन्म है।

प्रश्न-63. पुरुषार्थ किसे कहते हैं ?

उत्तर : जब कोई भी मनुष्य अपनी और दूसरों की उन्नति और विकास के लिए ठोस व लाभकारी प्रयत्न करता है तो उसे पुरुषार्थ कहते हैं। पुरुषार्थ ही हमें अपने परम उद्देश्य की पूर्ति के निकट ले जाता है। जैसा कि प्रश्न-उत्तर 44 में वर्णित है **कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः॥** (यजुर्वेद 40.2) मनुष्य कर्मों को करता हुआ एक सौ वर्ष पर्य्यन्त जीने की इच्छा करे, अर्थात् मनुष्य जब तक जीता रहे तब तक बराबर उद्योग करता रहे। बराबर उद्योग करनेवाला मानव पुरुषार्थी कहलता है।

—स्वामी विश्वेश्वरानन्द ब्रह्मचारी, पुरुषार्थ-प्रकाश, 1988 ई०

श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्तर्ते श्रिताः। (अथर्व 12/5/1) परम ब्रह्म ने श्रम से – तप से इस सब सृष्टि का सर्जन किया है और न्यायरूप सत्य के आश्रित वित्त, धनादि को परमात्मा ने दिया, इसलिए हम भी परिश्रमी पुरुषार्थी बनें। वेद का सन्देश है—वह श्रम भी सत्य के आधार पर हो।

—श्री वीरसेन वेदश्रमी, वैदिक सम्पदा।

पुरुषार्थ : अपने लक्ष्य की पूर्ति हेतु कर्मठ हो कार्य करना। पुरुषार्थ चार प्रकार का है—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।

चरन्वै मधुं विन्दति चरन्स्वादुमुदुम्बरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेयाणं यो न तंद्रयते चरन्॥
चरैवेति चरैवेति॥ (ऐतरेय ब्राह्मण 7.15)

'मधुमक्खी बड़े परिश्रम से मधु इकट्ठा करती है और पक्षी प्रयत्न करके ही फलों के स्वाद का आनन्द लेते हैं। सूर्य की भी पूजा होती है क्योंकि वह अनवरत प्रकाश देने का परिश्रम करता है। इसलिए प्रत्येक प्राणी को पुरुषार्थी बनने का प्रयत्न करना चाहिए।'

एक पुरुषार्थी स्वयं ही अपने कर्मठ कार्यों से अपना मार्ग निर्धारित करता है। उसे किसी ज्योतिषी या भविष्यवक्ता की आवश्यकता नहीं है।

प्रश्न-64. कर्म से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर : कर्म वह प्राकृतिक सिद्धान्त है, जिसका सम्बन्ध नि:स्वार्थ कार्यों से है। प्रत्येक मनुष्य को अपने कर्मों का फल मिलता है। 'जैसा बोओगे वैसा ही काटोगे' की कहावत यहाँ उपयुक्त प्रतीत होती है। कोई अपने कर्मों के फल को बदल नहीं सकता। उपनिषदों में कहा भी गया है–**"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।"** मनुष्य जिन शुभ अथवा अशुभ कर्मों को मन अथवा शरीर द्वारा करता है, ईश्वरीय व्यवस्था-अनुसार उसका फल अवश्य मिलता है।

जब कोई भी मनुष्य नि:स्वार्थ भाव से सेवा या कार्य करता है, तो उसे 'निष्काम कर्म' कहते हैं। ईश-उपनिषद् (1.12) इस प्रकार के कर्म की बड़ी सुन्दर विवेचना करता है। योगेश्वर श्रीकृष्ण गीता (2.89) में भी निष्काम कर्म की परिभाषा निम्न प्रकार से देते हैं :

'अपने कर्त्तव्य को भक्तिभाव से लेना और उसके प्रति समर्पित होना ही निष्काम कर्म है।'

जब निष्काम-कर्म, सर्व-व्यापक प्रभु को समर्पित किया जाता है तो यह निष्काम-कर्म 'यज्ञ' बन जाता है। इस पुस्तक में जहाँ भी कर्म का वर्णन है, वहाँ उसका अभिप्राय नि:स्वार्थ कर्म से है। चाहे निष्काम कर्म हो अथवा पुरुषार्थ, इनमें भाग्य का कोई हाथ नहीं होता।

प्रश्न-65. योग क्या है ?

उत्तर : 'योग' एक संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ है जोड़ना। योग एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रभु को पाया जा सकता है। पतंजलि ऋषि कहते हैं–'योग का अर्थ है मानसिक वृत्तियों पर सम्पूर्ण नियन्त्रण।' (**योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:**–योगदर्शन 1.2) श्रीकृष्ण गीता में (2.48 और 2.50) उपदेश देते हैं–अनुकूल

अथवा प्रतिकूल परिस्थिति में मानसिक तथा भावनात्मक संतुलन को बनाए रखना ही योग है (**समत्वम् योग उच्यते; योगः कर्मसु कौशलम्**) भावनात्मक वृत्तियों के समन्वित संतुलित योग को श्रेष्ठतम कर्म भी कहा गया है। योग शारीरिक और मानसिक संतुलन बनाए रखने के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

टिप्पणी : *आजकल योग के प्रचलित व्यायामरूप को वास्तविक योग न समझिए। योग की विभिन्न शारीरिक मुद्राएँ, भंगिमाएँ, स्वास्थ्य और शारीरिक रूप-रंग के लिए ही अच्छी हैं। वास्तविक योग क्या है–इसका उत्तर, प्रश्न संख्या 66 में 'पतंजलि के अष्टांग योग' शीर्षक के अन्तर्गत दिया है।*

प्रश्न–66. पतंजलि का अष्टांग योग क्या है ?

उत्तर : ऋषि पतंजलि ने आत्म-ज्ञान की प्राप्ति के लिए आठ अंगों अथवा चरणों का वर्णन किया है। योग का प्रत्येक अंग मनुष्य को मोक्ष के और निकट ले जाता है। '**अष्टांग**' का अर्थ है 'आठ अंग'। ये आठ अंग इस प्रकार हैं: **यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, और समाधि।** योग के एक-एक कदम पर बढ़कर ही समस्त मानसिक और शारीरिक क्रियाओं पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त कर सकते हैं। इसमें सफलता प्राप्त होने पर ही प्रभु स्वतः प्राप्त होते हैं।

सुलभ जीवन जीने की कला 'योग' है। ऋषि पतंजलि के अष्टांग योग आत्मज्ञान तथा प्रभु-प्राप्ति के लिए एक आचार-संहिता है। योग के प्रवर्तक पतंजलि ऋषि अष्टांग-योग की परिभाषा को एक अति संक्षिप्त वाक्य में पूर्ण कर देते हैं :

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावंगानि।

–योग दर्शन 2.29

वास्तव में योग के ये आठ अंग सुलभ जीवन जीने का मार्ग दर्शाकर स्वयं को अंतःकरण का ज्ञान अर्थात् आत्मज्ञान देकर प्रभु से साक्षात्कार कराते हैं।

प्रश्न-67. यम क्या है ?

उत्तर : योग का पहला अंग **'यम'** है। पाठकों को समझाने हेतु 'यम' का सरल अर्थ 'स्वयं पर नियन्त्रण' करना है। जब स्वयं पर नियन्त्रण करेंगे तो आत्म-नियन्त्रण स्वत: प्राप्त हो जाता है। 'यम' सुलभ जीवन जीने की कला का पहला कदम है। 'यम' अथवा अनुशासन के पाँच भाग हैं।

पहला भाग-**'अहिंसा'** है। दूसरों के अधिकारों का हनन न करते हुए, शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की भावना से जीवन जीना ही अहिंसा है। दूसरा भाग-**'सत्य'** का आचरण करना है। तीसरा भाग-**'अस्तेय'** है। 'अन्य जनों की वस्तुओं को बगैर पूछे काम में नहीं लेना अथवा न ही चुराना' अस्तेय है। चौथा भाग-**'ब्रह्मचर्य'** है। इसका अर्थ है 'इन्द्रियों की लिप्सा से बचकर रहना और ब्रह्म की ओर बढ़ना' ताकि जीवन के लक्ष्य को पूर्ण करने में और बाधाएँ न आएँ। पाँचवाँ भाग-**'अपरिग्रह'** है। इसका अर्थ-भौतिक वस्तुओं के लोभ से बचकर, कम से कम वस्तुओं पर निर्भर रह कर सुगम जीवन जीना। सुलभ जीवन जीने हेतु सर्वप्रथम आत्म-नियन्त्रण प्राप्त करना है, अत: यम और नियम के सिद्धान्तों को मन, वचन और कर्म से पालन करें तो 'स्वयं पर नियन्त्रण' का पहला कदम स्वत: बढ़ सकता है।

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमा:॥

—योग दर्शन 2.30

मन, वचन और कर्म से अनुशासन में रहना यम है। यम के पाँच भाग हैं-अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह।

प्रश्न-68. नियम से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर : 'नियम' का अर्थ है निर्देश अथवा क्रिया-विधि। यम की तरह नियम के भी पाँच अंग हैं-1. **शौच** अथवा 'आंतरिक और बाह्य शुद्धि'; 2. **सन्तोष** अर्थात् सन्तुष्टि; 3. **तप**, 'निरन्तर कार्य करते हुए अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में श्रद्धा-सहित लगे रहना

ही तप है'; 4. **स्वाध्याय** अथवा धर्मग्रन्थों का स्वयं द्वारा पठन और पाठन; 5. **ईश्वर प्रणिधान** अर्थात् प्रभु की सेवा में सर्व-समर्पित। यम और नियम के सिद्धान्तों को मन और कर्म से पालन करें तो सुलभ जीवन की कामना का साकार चित्र उभरने लगता है।

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः॥

–योग दर्शन 2.32

जीवन को विधिवत् बनाना 'नियम' कहलाता है।

प्रश्न–69. अहिंसा का क्या अर्थ है ?

उत्तर : वैदिक दर्शन के अनुसार संसार के सभी जीवों में आत्मा है, इसीलिए किसी भी प्राणी की हिंसा अथवा वध करना या कष्ट देना मना है। कोई भी प्राणी आत्म-विहीन होकर प्रकृति में स्वतन्त्र रूप से विद्यमान नहीं हो सकता। आत्मा ही प्राणियों का जीवनाधार है। अहिंसा का अर्थ–किसी को हानि न पहुँचाना है। इसका अर्थ यह नहीं है कि स्वयं की सुरक्षा का ध्यान न रखें और कायर की भाँति रहें। अहिंसा का वास्तविक अर्थ है शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के आधार पर आचरण करना। अहिंसा का पालन मन, कर्म और वचन से करना होता है, तभी जीवन सुखी और सुगम हो सकता है। जब सभी वर्ग आपस में शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के सिद्धान्त का पालन करते हैं तो वे 'अहिंसा' का ज्वलन्त उदाहरण देते हैं। हिन्दू धर्म का विश्व को मुख्य योगदान 'अहिंसा' है।

व्यावहारिक रूप में अहिंसा का अर्थ है–सहनशीलता या सहिष्णुता, समन्वयता, और मित्रता, ताकि सभी शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व से सुरम्य जीवन का आनन्द ले सकें।

प्रश्न–70. संक्षेप में सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की परिभाषा दीजिए।

उत्तर : सत्य : सत्य का अर्थ है सबसे दुर्भावना-रहित सच्चा व्यवहार करना। मनसा-वाचा-कर्मणा सत्य का व्यवहार करना अर्थात् जो मन में है, वैसा ही वाणी से बोला जाए और वैसा ही

कर्म द्वारा आचरण में किया जाए।

अस्तेय : दूसरों के अधिकारों का या उनकी वस्तुओं का किसी रूप में भी हनन न करना—जो दूसरों का है, उसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष ढंग से न छीनना।

ब्रह्मचर्य : इन्द्रिय-लिप्सा से दूर रहकर आत्म-ज्ञान और प्रभु-ज्ञान की प्राप्ति के लिए अध्ययन में मग्न रहना ही ब्रह्मचर्य है।

अपरिग्रह : इसका अर्थ है लोभ, वासना, अहंकार हेतु वस्तुओं का संग्रह न कर, एक समर्पित साधारण और परोपकारी जीवन यापन करना।

प्रश्न-71. शौच से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर : शौच का अर्थ है शरीर की बाहरी और भीतरी पूर्ण शुद्धि। इसमें निद्रा और मल-त्याग आदि क्रियाओं का भी नियन्त्रण सम्मिलित है। शारीरिक क्रियाओं का दिन-रात के चक्र और वर्ष-भर में होनेवाले परिवर्तनों के साथ समन्वय होना आवश्यक है। कॉर्टीकॉस्टरॉयड्स हार्मोन्स अर्थात् शरीर के वे आंतरिक स्राव जो मानसिक दबाव को झेलने में सहायक होते हैं और मस्तिष्क की आंतरिक घड़ी (Circadian rhythm) को प्रतिदिन बनाए रखने के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, दिन-रात के चक्र को समान रूप से बनाए रखते हैं। ये आंतरिक शौच क्रियाओं के अंतर्गत आते हैं। अगर हम नियत समय पर सोएँ और नियत समय पर जागें तो हमें नींद न आने या नींद अच्छी तरह न आने की समस्या का सामना ही न करना पड़े। साथ ही साथ आंतरिक घड़ी को विधिवत् नियन्त्रित करने से भीतरी शारीरिक रिसाव हार्मोन्स कॉर्टीकॉस्टरॉयड्स का भी स्वत: ही नियन्त्रण हो सकता है, जिससे अनेक व्याधियों की स्वत: रोकथाम हो सकती है।

संक्षेप में शौच का अर्थ : *शरीर की बाह्य और आंतरिक शुद्धता के द्वारा जीवन के भीतरी परिवर्तनों का समन्वय करना है।*

प्रश्न-72. सन्तोष क्या है ?

उत्तर : तृप्ति अथवा आनन्द की भावनाओं को संयमित रखना 'सन्तोष' कहलाता है। जिस मनुष्य के मन में सन्तोष है वह अपनी उपलब्धियों, योग्यताओं और प्रयत्नों को बिना पश्चात्ताप या बिना उत्तेजना अनुभव किए शांत मन से स्वीकार कर सकता है। इस तरह वह अपने काम में अधिक सफल होता है, क्योंकि भावनाएँ निर्णय लेने की योग्यता पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकेंगी। तृप्ति को भी एक तरह से सन्तोष कहा जा सकता है, परन्तु सन्तोष के दैवी अर्थ हैं पुरुषार्थ करते हुए अनुशासित जीवन से तृप्त रहना।

प्रश्न–73. तप और स्वाध्याय करने का क्या अर्थ है ?

उत्तर : शीत-उष्ण, सुख–दु:ख आदि द्वन्द्वों का सहना ही **तप** है। किन्तु ध्यान रखना चाहिए कि द्वन्द्वों का सहन करना अपनी सहन-शक्ति के बाहर न हो, अन्यथा शरीर में धातु–वैषम्य उत्पन्न होकर साधक को रोगी बना देता है। घोर परिश्रम और श्रद्धा से निरन्तर उद्देश्य–रत कर्मठ होकर कार्य करने को संक्षेप में तप की संज्ञा दे सकते हैं। तप चित्त को शुद्ध और निर्मल करने में सहयोगी सिद्ध होता है।

स्वाध्याय का अर्थ है धार्मिक एवं अध्यात्म–सम्बन्धी ग्रन्थों का स्व–अध्ययन अर्थात् आत्मविषयक पठन और पाठन, चिन्तन व मनन करना। पूर्वकालिक योगी–जनों की जीवन-गाथाओं के अध्ययन–मनन से व्यक्ति को अपने अभिलषित मार्ग पर चलने का प्रोत्साहन मिलता है। "आत्मा का स्वरूप क्या है? कहाँ से आती और कहाँ जाती है?" इत्यादि की जानकारी होने से ज्ञान की भावना जागृत होती है। जैसे एक दीपक के प्रज्वलित कर लिये जाने पर उससे अन्य दीपक अनायास प्रज्वलित कर लिये जाते हैं, उसी प्रकार स्वाध्याय से आत्म-साक्षात्कार करने में सहजता आती है, मानव-जीवन सुगम और शांतिमय बनता है।

प्रश्न–74. ईश्वर–प्रणिधान क्या है ?

उत्तर : अनन्य भक्ति-भाव से ईश्वर की आराधना, चिन्तन

करना और प्रत्येक कार्य परमात्मा में समर्पण-भावना से सम्पन्न करना अर्थात् अपने-आपको पूर्णरूप से परमेश्वर में समर्पित कर देना ही ईश्वर-प्रणिधान कहलाता है। इससे आत्मतत्त्व का प्रत्यक्ष बोध होता है, जो जीवन को सफल और शांतिमय बनाता है।

प्रश्न-75. आसन क्या है ?

उत्तर : बिना हिले-डुले लम्बे समय तक सुखपूर्वक एक सही स्थिति में बैठने की अवस्था को आसन कहा जाता है। आसन में शरीर सीधा, आँखें बन्द और मुख को सामने सीधा रखें। हथेलियाँ घुटनों पर रख, अथवा हथेली पर हथेली रखकर, नाभि के नीचे पैरों के ऊपर रखें। ईश्वर का ध्यान करने के लिए आराम से बैठने की स्थिति में सामान्य आसन पद्मासन, सुखासन, सिद्धासन हैं। अधिक जानकारी के लिए कृपया पतंजलि-कृत योगदर्शन देखें।

स्थिरसुखमासनम्। —योगदर्शनम् 2.46

'आराम से एक स्थिति में अधिक देर तक सीधे बैठने (Anatomically correct position) की स्थिति को आसन कहते हैं।' (कुछ लोग आसन-पद्धति को हठयोग भी कहते हैं।)

प्रश्न-76. प्राणायाम और प्रत्याहार क्या है ?

उत्तर : प्राणायाम का अर्थ है प्राण अर्थात् जीवन-शक्ति को वश में करना जो शरीर की सभी क्रियाओं और अंगों को नियन्त्रित करती है। **प्राणायाम** 'अनैच्छिक क्रियाओं जैसे श्वास-प्रक्रिया और हृदय की धड़कन को आत्म-नियन्त्रित करने की विधि है।'

तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः। योगदर्शन 2.47

श्वास-प्रश्वास की अनुशासित प्रक्रिया द्वारा ओ३म् का लगातार उच्चारण करते हुए शरीर की अनैच्छिक क्रियाओं को वश में करना प्राणायाम है। इस सिद्धि को प्राप्त करने के लिए बहुत गहन अभ्यास की आवश्यकता है।

प्रत्याहार स्वयं की प्रवृत्ति को अन्तर्मुखी कर इन्द्रियजनित उत्तेजनाओं से मुक्ति दिलाना है। प्रारम्भ में व्यक्ति भूख को नियन्त्रित

कर अपनी पाचन-शक्ति को वश में करता है। तत्पश्चात् वह ईश्वर-प्रेरणा से अपनी समस्त वासनाओं को आत्मनियन्त्रित करता है। प्रत्याहार का अर्थ इन्द्रिय-जनित सुखों से ऊपर उठकर दीर्घायु और अच्छे स्वास्थ्य के लिए शुद्ध शाकाहारी एवं पौष्टिक भोजन ग्रहण करना भी है। यह आत्मविवेचन, गहन विश्लेषण और अपनी अन्तःशक्ति को जागृत करने की अवस्था है। प्रत्याहार एकाग्रचित्तता को बढ़ाकर और भावनाओं को वशीभूत कर अपने अन्तःकरण एवं अन्तरात्मा को साक्षात् करने को जहाँ श्रेष्ठ मार्ग प्रदान करता है, वहाँ आसन के सिद्ध होने पर विधिपूर्वक विचार से यथाशक्ति श्वास-प्रश्वास की गति को रोकने की क्रिया ही प्राणायाम कहलाती है। प्राणायाम योग्य निर्देशन में सीखना चाहिए।

प्राणायाम करने से मन की एकाग्रता बढ़ जाती है और चित्त की शुद्धि होती है। जैसे अग्नि में तपाने से स्वर्ण आदि धातुओं के मल नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही प्राणायाम से हमारी इन्द्रियों के मल नष्ट हो जाते हैं।

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्। –योगदर्शन 2.52

अर्थात् प्राणायाम के अभ्यास से प्रकाश अर्थात् मन को ढकने वाला अज्ञानरूपी आवरण नष्ट हो जाता है।

धारणासु च योग्यता मनसः। –योगदर्शन 2.53

अर्थात् मन को रोकने या थामने की योग्यता बढ़ जाती है।

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।

–योगदर्शन 2.54

अर्थात् इन्द्रियों का अपने विषयों के साथ सम्बन्ध न रहने पर मन के स्वरूप जैसा हो जाना प्रत्याहार कहलाता है। मन के रुक जाने पर नेत्रादि इन्द्रियों का अपने-अपने विषयों के साथ सम्बन्ध नहीं रहता, अर्थात् इन्द्रियाँ शान्त होकर अपने कार्य बन्द कर देती हैं। इसके सिद्ध होने पर योगाभ्यासी का इन्द्रियों पर सर्वोत्कृष्ट वशीकरण, अर्थात् इस तरह से नियन्त्रण हो जाता है

कि वह अपने मन को जहाँ और जिस विषय में लगाना चाहता है, लगा लेता है, और जिस विषय से हटाना चाहता है हटा लेता है।

प्रश्न-77. धारणा, ध्यान और समाधि क्या हैं ?

उत्तर : धारणा, ध्यान और समाधि योग की अन्तिम तीन अवस्थाएँ हैं। **धारणा** निश्चल एकाग्रचित्तता की प्रथम अवस्था है। इस अवस्था में साधक अपने ध्यान को स्थिर कर मन को वश में करने का प्रयत्न करता है। धारणा की अवस्था में साधक अपने श्वास-प्रश्वास की प्रक्रिया पर ध्यान केन्द्रित करता है, जैसा कि प्राणायाम की व्याख्या में दिया गया है। साधक ओ३म् का धीमे-धीमे उच्चारण कर इसकी लयबद्धता पर भी अपना ध्यान लगा सकता है, जैसे-'ओ……म्!'……'ओ……म्!' इस प्रकार साधक ओ३म् के इस धीमे स्वर और इसके द्वारा प्राप्त की गई शान्ति पर लगातार अपना ध्यान लगाए रख सकता है। यह प्रक्रिया सब प्रकार की समाधियों के मूल में है, चाहे यह बौद्ध, जैन अथवा सिक्ख किसी भी योग-परम्परा से सम्बंधित हो।

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा। -योग दर्शन 3.1

मस्तक, नासिका, कण्ठ, नाभि, हृदय आदि किसी एक स्थान पर मन को स्थिर करना धारणा है।

तत्र प्रत्यैकतानताध्यानम्। -योग दर्शन 3.2

धारणा वाले स्थान पर मन को स्थिर करके ईश्वर-विषयक चिन्तन को निरन्तर बनाए रखना और बीच में किसी अन्य विषय को न आने देना **ध्यान** है, अर्थात् मन में सांसारिक विषयों का न रहना और सांसारिक विषयों के प्रति राग का नष्ट हो जाना तथा ईश्वर का चिन्तन करते रहना 'ध्यान' है।

'ध्यान' वह अवस्था है जिसमें साधक अपने ध्यान को किसी बिन्दु पर पूर्णरूप से केन्द्रित कर देता है। ध्यान की अवस्था में मस्तिष्क की सभी क्रियाएँ शून्य पर स्थिर हो जाती हैं। साधक

वर्षों के अभ्यास से 'धारणा' और 'ध्यान' की अवधि को धीरे-धीरे बढ़ाकर परमानन्द की अवस्था 'समाधि' को प्राप्त कर लेता है।

ध्यान और एकाग्रचित्तता की परमावस्था **'समाधि'** है। समाधि आत्म-साक्षात्कार की एक ऐसी अलौकिक अवस्था है, जिसमें आत्मा निरपेक्ष, अनंत, दिव्य परमात्मा में लीन हो जाती है। समाधि स्वयं को पूर्णतया शून्य कर देने की अवस्था है। साधक परम चेतन की अवस्था को प्राप्त कर लेता है जहाँ पर कर्त्ता और कर्म की दूरी समाप्त हो जाती है, परन्तु कर्त्ता और कर्म के अन्तर को अति सूक्ष्मता से समझा तथा अनुभव किया जा सकता है। साधक चेतना की परम अवस्था को प्राप्त कर लेता है जिसमें कर्त्ता को कर्म समझता है और कर्म को कर्त्ता अनुभव करता है। समाधि की अवस्था में साधक वेदों में निहित सत्य का ज्ञान प्राप्त कर उसे अनुभव करता है, स्वयं को स्थूल से अलग कर जड़ और चेतन के अन्तर को समझता है। इस प्रकार से साधक आत्मा और स्थूल की प्रवृत्ति का ज्ञान और अनुभव कर परम सत्य को प्राप्त कर लेता है।

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः॥

—योग दर्शन 3.3

अर्थात् वह ध्यान जो केवल ईश्वर के स्वरूप को प्रकाशित करनेवाला है, तथा जो स्वरस अपने-आपसे शून्य होगा- समाधि कहा जाता है।

इसमें वस्तु-तत्त्व ईश्वर प्रधान हो जाता है और व्यक्ति अपने को भूल-सा जाता है—जिसमें भी समाधि लगाएगा, वही दिखेगा। साधक अभ्यास करते हुए चित्त पर इतना अधिकार कर लेता है कि कल्याण के लिए एक लक्ष्य—ओ३म् सर्वरक्षक—पर ही जमा रहे, और बीच में कोई वृत्ति नहीं आती तो वह स्थिति समाधि कहलाती है। चित्त की एकाग्रता को समाधि कहते हैं, अर्थात् मन

को ईश्वर में स्थिर कर देना समाधि है।

समाधि से साधक को इसी जीवन में परमात्मा द्वारा प्रदत्त परमानन्द की प्राप्ति होती है। कर्त्ता और कर्म का अन्तर समाप्त हो जाता है। आत्मा का परमात्मा से मिलन हो जाता है।

पातंजल अष्टांग-योग (विभिन्न भाग, संक्षेप में)

1. यम—निम्न पाँच सिद्धान्त 'यम' कहलाते हैं :

1. **अहिंसा :** किसी भी प्रकार की हिंसात्मक गतिविधि का त्याग और सह-अस्तित्व की भावना को बनाए रखना।
2. **सत्य :** मन, वचन और कर्म से सत्याचरण करना।
3. **अस्तेय :** दूसरों के अधिकारों का हनन न करना और चोर-भावना का त्याग।
4. **ब्रह्मचर्य :** ईश्वर के सत्य ज्ञान को प्राप्त करने की कामना जगाकर मस्तिष्क को वासनाओं से मुक्त रखना और इन्द्रियजनित सुखों को त्यागकर प्रभु-प्राप्ति करना।
5. **अपरिग्रह :** लालच और संग्रह की प्रवृत्ति का त्याग।

2. नियम—पाँच नियम :

1. **शौच :** आन्तरिक अर्थात् वैचारिक एवं मानसिक पवित्रता बनाए रखना। उपयुक्त साफ-सफाई का ध्यान रखना बाहरी अर्थात् शारीरिक और आंतरिक शुद्धता को बनाए रखना।
2. **सन्तोष :** सन्तोष एवं सहृदयता का संचार।
3. **तप :** लक्ष्य-प्राप्ति के लिए शारीरिक एवं मानसिक दृढ़ता।
4. **स्वाध्याय :** आर्ष ग्रन्थों अर्थात् वैदिक ग्रन्थों का अध्ययन और इस ज्ञान को दैनिक आचरण में लाना।
5. **ईश्वर-प्रणिधान :** ईश्वर के प्रति अनन्य भक्ति-भावना, सर्व क्रिया इत्यादि सभी प्रभु को समर्पण कर देना।

लेखक के निर्देशानुसार कलाकार विनोद शर्मा द्वारा योग चित्रण

3. **आसन** : ध्यान के लिए सही, सीधी और सुखकारी शारीरिक स्थिति।

4. **प्राणायाम** : श्वास-प्रश्वास की प्रक्रिया पर ध्यान केन्द्रित कर सूक्ष्म प्राणशक्ति को वश में करना।

(बहिरंग योग : आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार)

5. **प्रत्याहार** : इन्द्रियों को वश में करना।

6. **धारणा** : एकाग्रचित्तता। भक्ति योग–एकाग्रचित्तता व अनन्य भक्ति–भाव से मंत्र–पाठ।

7. **ध्यान** : गहन एकाग्रचित्तता, स्वयं को ध्यानबद्ध कर लेना।

8. समाधि : आत्मा का निरपेक्ष, अनादि, दिव्य परमात्मा के साथ अलौकिक साक्षात्कार और इस साक्षात्कार से दिव्य आनन्द की प्राप्ति।

(राजयोग–धारणा, ध्यान और समाधि, योग के अन्तरंग साधन हैं)

प्रश्न–78. ध्यान और योग के क्या लाभ हैं ?

उत्तर : 'ध्यान' द्वारा एकाग्रता और मानसिक शान्ति में वृद्धि होती है, जिससे आत्मविश्वास और वैचारिक स्पष्टता की प्राप्ति होती है। 'ध्यान' उद्वेलित मन को शान्त करके तनाव और दबाव को घटाता है। योग द्वारा शारीरिक, मानसिक, और आत्मिक विकास होने के साथ आत्म-ज्ञान की प्राप्ति होती है, जो मनुष्य को ईश्वर के और निकट ले जाती है।

हरबर्ट बेन्सन एम॰डी॰ द्वारा लिखित पुस्तक The Relaxation Response के अनुसार योग/'ध्यान' मानसिक और शारीरिक तनाव को कम कर रक्तचाप का नियन्त्रण करता है। जान केब्ट-जिन, पी-एच॰डी॰ ने यह सिद्ध किया है कि चिंता और कष्ट भी 'ध्यान' द्वारा कम किए जा सकते हैं। डॉ॰ डीन आरनिश जो सैनट्यागो, केलिफोर्निया, अमेरिका के मेडिकल कॉलेज में प्रोफेसर ऑफ मेडिसिन हैं, प्रमाणित कर चुके हैं कि योग, 'ध्यान' और शाकाहारी भोजन से केवल हृदय-रोग रोका ही नहीं जा सकता, बल्कि इसे दूर भी किया जा सकता है। साधारण भाषा में 'ध्यान' उन कारणों को भी दूर कर सकता है, जिससे हृदय-रोग होने की संभावना बनती है। कई अध्ययनों ने प्रदर्शित किया है कि योग और 'ध्यान' के प्रभावकारी अभ्यास द्वारा शरीर का तापमान भी नियन्त्रित किया जा सकता है। यही नहीं, योग/'ध्यान' रोग के प्रतिरोध करने की शारीरिक शक्ति (Immunity) को बढ़ाता है, वायरस तथा बैक्टीरिया जीवाणु से फैलनेवाले रोगों की रोकथाम भी करता है।

वैज्ञानिक अध्ययनों (बेन्सन एच॰ 1982, 1996) ने सिद्ध किया है कि योग शरीर के कोर्टिसोन स्तर को सामान्य बनाए रखकर मेटाबोलिज्म (Metabolism) क्रिया को 60 प्रतिशत तक कम करता है।

योग शारीरिक और मानसिक तनाव को कम करता है, जिससे मानसिक असंतुलन और हृदयरोगों को कम करने में सहायता मिलती है। पतंजलि का अष्टांग-योग ही एकमात्र प्रामाणिक योग है, जिसके द्वारा मस्तिष्क, स्थूल शरीर पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार योग/'ध्यान' द्वारा स्वस्थ दीर्घ आयु का जीवन भोगा जा सकता है, जिसे सुगम जीवन कहते हैं।

ऋषि पतंजलि का अष्टांग योग ही अति प्राचीन वास्तविक मूल योग है, जो चित्त- नियन्त्रण प्रदान करता है, इसी के आधार पर अनेक गुरुओं ने अपने ढंग से नये नाम देकर नई-नई प्रथाएँ आरम्भ कर दी हैं।

प्रश्न-79. हिन्दू पूजा-पद्धति में कौन-सी वस्तुओं का प्रयोग करते हैं ?

उत्तर : भक्तगण हिन्दू पूजा की रीतियों में सब प्रकार के प्राकृतिक पौधों से प्राप्त वस्तुओं का प्रयोग करते हैं। *पूजा के लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण वस्तुएँ कपूर, नारियल और फूल हैं। कपूर या काफूर एक बहुत प्रज्वलनशील पदार्थ है, जो 'कपूर वृक्षों' से प्राप्त किया जाता है। कपूर का प्रयोग पूजा की वेदी में अग्नि प्रज्वलित करने के लिए या दीपों में शुद्ध घी या तेल में भीगी बत्तियों को जलाने के लिए किया जाता है। नारियल, बेल और फूल चढ़ावे के रूप में हिन्दू लोग अक्सर प्रयुक्त करते हैं।*

प्रश्न-80. भगवान् का सृजन किसने किया और भगवान् का अस्तित्व क्या है ?

उत्तर : भगवान् अर्थात् ईश्वर या परमेश्वर का कोई सृजनहार नहीं है, भगवान् स्वयं ही सबके स्रष्टा हैं। उन्हें अकाल कहा जाता

है, क्योंकि वे ही समय की सीमाओं से परे हैं। इसीलिए उन्हें शाश्वत, अजन्मा, अनन्त, नित्य और अनश्वर कहते हैं।

भगवान् समय के परे हैं। वे सृष्टि के पहले भी थे और सृष्टि के अन्त होने पर भी रहेंगे। भगवान् अनन्त और शाश्वत हैं, क्योंकि भगवान् अज या अजन्मा हैं, इसलिए उनके अन्त होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

प्रश्न-81. लोग मेरा भगवान्, तुम्हारा भगवान्, अथवा उसका भगवान् ऐसा क्यों कहते हैं ?

उत्तर : प्रभु किसी की निजी सम्पत्ति नहीं है, जो केवल मेरा, तुम्हारा, या उसका हो। ईसाई, मुस्लिम या यहूदी नामक भी कोई अलग से भगवान् नहीं है। केवल 'मत' के माननेवाले लोग, जैसे ईसाई और मुस्लिम ही 'मेरा भगवान्, तुम्हारा भगवान्, और 'उसका भगवान्' कहते हैं। ये शब्द 'मेरा तुम्हारा, या उनका' कहना केवल अज्ञान या अहंकार को ही व्यक्त करते हैं। अहंभाव केवल अज्ञान को स्थायी बनाता है।

भगवान् कोई व्यक्ति नहीं है। सबके एक ही भगवान् हैं जो अजर, अमर, स्वामियों के स्वामी, करुणामय और सर्वव्यापक हैं। ऋषि-मुनि भगवान् के विभिन्न गुणों को कई नामों से वर्णित करते हैं, जैसे ऋग्वेद 1.164.46 में इन्द्र=सर्वशक्तिमान्, सर्वोच्च, ज्योतिर्मय, शक्ति, मित्र, सबका सखा, वरुण=सर्वाधिक वांछित, परमेश्वर, अग्नि=स्वयं ज्योतिर्मय प्रभु, भगवान्=सर्वाधिक प्रिय, और समस्त ज्ञानमय हैं। वे दिव्य हैं, विश्वात्मा हैं, यम हैं, अर्थात् संसार के नियामक हैं, मातृसमान अर्थात् ब्रह्म ही स्रष्टा हैं।

प्रामाणिक वेद और उपनिषद् प्रभु को सर्वाधिक श्रद्धेय, प्रमुख एवं उत्तम नाम 'ओ३म्' से सम्बोधित करते हैं। ओ३म् का अर्थ है 'सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ ब्रह्म (यजुर्वेद 40, 17), अमर, पूज्य (छांदोग्य उपनिषद्-1), जो श्रद्धा और भक्ति के योग्य है।' सभी अच्छे कार्य जो ओ३म् का नाम लेकर किए जाते हैं, परमात्मा

को प्राप्त होते हैं। (देखें कठ उपनिषद्, 3-15)

प्रभु का प्राथमिक, प्राकृतिक और मुख्य नाम 'ओ३म्' है। 'ओ३म्' नाम से परमात्मा के सभी गुणों का प्रादुर्भाव होता है। 'ओ३म्' नाम के अतिरिक्त प्रभु के अन्य नाम दूसरी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। (माण्डूक्य उपनिषद्-9)

इसी प्रकार यह कथन 'मैं तुम्हारे लिए प्रार्थना करूँगा' विचार करने योग्य है। ऐसे कथन कठिन परिस्थितियों में केवल आशा ही देते हैं। जहाँ तक खाने और सोने का सम्बन्ध है, कोई भी मनुष्य किसी दूसरे के लिए 'खा नहीं सकता', 'सो नहीं सकता', इस तरह का कोई भी काम कर भी नहीं सकता। जो ईश्वर-प्राप्ति का इच्छुक है, उसे स्वयं ही भक्ति करनी होगी। निरुक्त 6.26.1 कहते हैं **'आर्य ईश्वरपुत्रः'** प्रत्येक प्राणी भगवान् की सन्तान है, इसलिए भगवान् और भक्त के बीच मध्यस्थता की कोई आवश्यकता ही नहीं है। पिता और पुत्र के बीच दूसरे की क्या आवश्यकता है? अतः भक्त द्वारा की गई भक्ति से ही भगवान् मिल सकते हैं, किसी अन्य से नहीं।

भगवान् किसी की निजी सम्पत्ति नहीं है। 'मेरा, तेरा, उसका भगवान् को सम्बोधित करना' मात्र अज्ञानता अथवा अहंकार का ही द्योतक हैं।

प्रश्न-82. हमें भगवान् की पूजा क्यों करनी चाहिए ?

उत्तर : हम भगवान् की पूजा इसलिए करते हैं कि हम अच्छे मनुष्य बनने के लिए भक्ति और समर्पण जैसे आधारभूत गुणों का विकास कर सकें। पूजा करने से हमें भगवान् के दिव्य गुणों का ज्ञान होता है। भगवान् की भक्ति से स्वयं की तथा स्वयं के साथ परिवार, समाज और राष्ट्र की उन्नति होती है, सद्भाव और शान्ति से श्री की भी वृद्धि होती है। भक्ति से मन में सब जीवों के प्रति दया और करुणा के भाव जागृत होते हैं।

भौतिक, मानसिक, शैक्षणिक, शारीरिक, आर्थिक, या अन्य

प्रकार के दु:खों की रोकथाम करने का उत्तम उपाय प्रभु-प्रार्थना ही है। प्रार्थना से हममें आत्म-विश्वास बढ़ता है और आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होती है, जिससे हमें अपनी बुराइयों और बुरी भावनाओं को नियन्त्रित करने में सफलता मिलती है। ईश्वर-भक्ति से हमें मानसिक शान्ति मिलती है, जिससे हमारा जीवन सुगम होकर सुख-समृद्धि की ओर अग्रसर होता है।

मन और शरीर पर नियन्त्रण करने के लिए स्वयं ही प्रभु की भक्ति करें।

प्रश्न-83. क्या भगवान् की पूजा करने से मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं ?

उत्तर : हम भगवान् की पूजा करते हैं, ताकि हम अधिक अच्छे मनुष्य बन सकें। हमें यह बात समझनी चाहिए कि भगवान् सृष्टि के रचयिता हैं और उन्होंने ऐसे प्राकृतिक नियम बनाए हैं जो प्रत्येक प्राणी के जीवन का निर्धारण करते हैं। मनुष्य अपनी योग्यताएँ जान पाता है और पुरुषार्थ करता है। प्रश्न 63 को भी देखिए! भगवान् के चिन्तन से मनुष्य को मानसिक शान्ति, और आत्मिक बल की प्राप्ति होती है।

जो अपनी रक्षा स्वयं करते हैं और करने में समर्थ हैं, उनकी रक्षा भगवान् करते हैं। ऋषि मनु का स्पष्ट कथन है :

धर्म एव हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो, मा नो धर्मो हतोऽवधीत्॥

—मनु॰ 8.15

जो व्यक्ति अपने धर्म अर्थात् शुभ सिद्धान्तों और स्वाभाविक उत्तरदायित्वों का त्याग कर देता है, धर्म उसे नष्ट कर देता है। जो लोग अपने अन्तर् के सत्य और औचित्य की भावना की रक्षा करते हैं, उनकी रक्षा धर्म करता है। इसलिए धर्म की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

प्रश्न-84. क्या यह कथन सत्य है- 'जो व्यक्ति भगवान् की

पूजा करता है, भगवान् उसके भूत, वर्तमान और भविष्य के सभी अपराध क्षमा कर देते हैं ?'

उत्तर : नहीं, प्रभु न्याय में अन्याय नहीं करता। प्रत्येक मनुष्य अपने कर्म के लिए स्वयं उत्तरदायी है, इसीलिए अच्छे कर्मों और धर्मभाव पर बल दिया जाता है। यही कर्म पुनर्जन्म को नियमित करनेवाली शक्तियाँ हैं। इस तरह स्वर्ग और नरक भी इसी संसार में भोगे जाते हैं। कोई भी व्यक्ति जब कोई कार्य करता है, तो उसे उसके परिणाम भुगतने के लिए तैयार रहना चाहिए, क्योंकि भगवान् के नियम अपरिवर्तनीय हैं अर्थात् जैसी करनी वैसी भरनी।

प्रार्थना एवं ध्यान से हमारा अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है जो हमें दुष्कर्म करने से रोकता है। उदाहरणार्थ कोई भी सच्चा ईश्वर-भक्त कभी किसी को कोई हानि नहीं पहुँचाएगा। उससे यदि बुरा हो भी जाता है, तो वह उसका परिणाम स्वीकार करने के लिए तैयार रहेगा।

प्रश्न-85. देव, देवता और दिव्यता से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर : देवता, देवी या देव शब्द संस्कृत के 'दिव्' धातु से निकले हैं। दिव् का अर्थ है मानव को लाभकारी वस्तुएँ देनेवाला। वास्तव में अंग्रेजी शब्द डिविनिटी (Divinity), डिवाइन (Divine) संस्कृत धातु 'दिव्'-'Div' से ही उत्पन्न हुआ है। इसी प्रकार अंग्रेजी का शब्द डीयटी (deity) संस्कृत के 'देव' शब्द से उत्पन्न हुआ है। 'देव' से लैटिन भाषा का 'डीअटस' (deitus) और अंग्रेजी का डीयटी (deity) बन गया।

कोई भी देव, देवता या Deity, भगवान् नहीं हो सकता, क्योंकि यह शब्द भगवान् के केवल एक गुण का ही द्योतक है और बहुत सीमित अर्थ में प्रभु के एक रूप को ही दर्शाता है। यह बात सबको जाननी चाहिए।

प्रश्न-86. यदि देव/देवता अथवा deity भगवान् नहीं है तो भगवान् कौन है ?

उत्तर : भगवान् सृष्टिकर्त्ता, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् और सर्वनियन्ता है। वह पूर्ण चेतन, सर्वत्र विद्यमान, अनादि, अनन्त, निराकार, न्यायकारी, अनश्वर, असीम, अनुपम, दयालु, अजन्म, अद्वितीय है। जैसा कि अथर्ववेद (13.4.15-19) में कहा है :

य एतं देवमेकवृतं वेद।
न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते।
य एतं देवमेकवृतं वेद।।
न पंचमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते।
य एतं देवमेकवृतं वेद।।
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते।
य एतं देवमेकवृतं वेद।।
स सर्वस्मै वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न।
य एतं देवमेकवृतं वेद।।

भगवान् केवल एक ही है, दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवाँ, छठा, सातवाँ, आठवाँ, नवाँ या दसवाँ नहीं; वस्तुतः वह अद्वितीय एवं एकमात्र है।

प्रश्न-87. भगवान् अथवा परमात्मा का मुख्य नाम क्या है ?

उत्तर : ईश्वर का प्रमुख पवित्र एवं प्राकृतिक निज नाम ओ३म् है, क्योंकि 'ओ३म्' ईश्वर के सभी मुख्य गुणों को प्रकट करता है। इसीलिए ईश्वर के सभी अन्य नाम गौण हैं। 'ओ३म्' के तीन अक्षर तीन महत्त्वपूर्ण क्रियाओं– रचना, पालन, और संहार के प्रतीक हैं। यदि सभी प्राणी भगवान् की रचना हैं, तो जाति, धर्म, भौगोलिक स्थिति और सांस्कृतिक विभिन्नताओं के होते हुए भी सभी भगवान् के नाम को उच्चारण करने में समर्थ होने चाहिएँ। अगर भगवान् है और भगवान् ने मनुष्य को उत्पन्न किया है, तब कोई भी मनुष्य जो अपने गले से ध्वनि उत्पन्न कर सकता है,

वह भगवान् के नाम का उच्चारण कर सकता है। पहली ध्वनि गले (vocal cords) की है 'अ', दूसरी ध्वनि होटों (oral cavity & lips open) की है 'उ', और तीसरी अन्तिम व्यंजनात्मक ध्वनि होंट बंद और नाक से (oral cavity & lips closed, nasal) उत्पन्न होती है 'म्'। अतः इन तीनों के मिश्रण से 'ओ३म्' शब्द की रचना होती है। 'ओ३म्' शब्द में भगवान् के सभी गुणों का समावेश है। इसीलिए 'ओ३म्' शब्द प्रभु का सर्वोच्च एवं सर्वश्रेष्ठ नाम है और इसी नाम से उन्हें पुकारना चाहिए जैसा कि वेद ने कहा है :

ओ३म् खं ब्रह्म॥ —यजुर्वेद 40-17

ओम् सर्वव्यापक महान् सार्वभौमिक ब्रह्म है।

माण्डूक्य उपनिषद् ने कहा है :

ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपाख्यानम्। माण्डूक्य उपनिषद्–1

सभी वेद और शास्त्र ओ३म् को भगवान् का मुख्य और स्वाभाविक नाम बताते हैं। अन्य सभी नाम दूसरे स्थान पर हैं।

छान्दोग्य उपनिषद् ने कहा है :

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत।—छान्दोग्य उपनिषद्–1

भगवान् अमर/अनश्वर है, उसका नाम ओ३म् है और केवल वही पूजनीय है, अन्य कोई नहीं।

योगदर्शन ने कहा है :

तस्य वाचकः प्रणवः। —पातंजल योगदर्शनम् 1.27

प्रणव–ओम्, परमात्मा के पूर्ण बोध अथवा पूर्ण स्वरूप को अभिव्यक्त करता है।

प्रभु का नाम लेने के लिए किसी प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं। एक शिशु भी ओम् बोल सकता है और उनका नाम इन्हीं स्वर-ध्वनियों (अ-उ-म्) से बनता है।

ओ३म् की सर्वव्यापकता
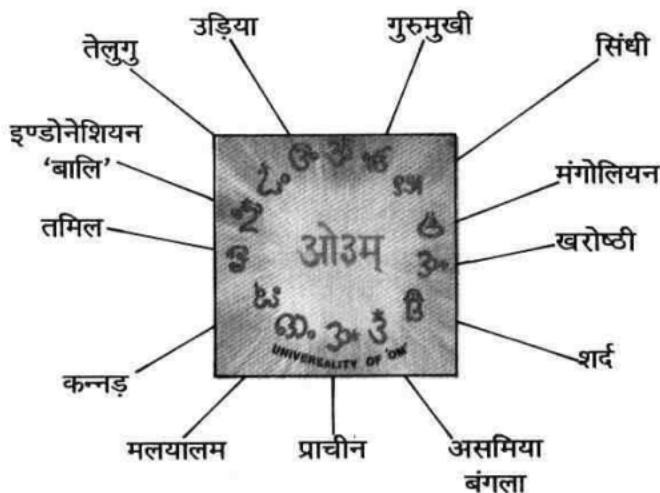
(लेखक के निर्देशानुसार कलाकार विनोद शर्मा द्वारा ओंकार का चित्रण)

प्रश्न-88. सच्चिदानन्द कौन है, अथवा सच्चिदानन्द से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर : भगवान् का कोई लिंग नहीं है, इसलिए यह प्रश्न ही नहीं उठता कि वे स्त्री, पुरुष, अथवा नपुंसक हैं। भगवान् के असंख्य गुण हैं, परन्तु मुख्यतया तीन गुणों से प्रभु को आसानी से समझ सकते हैं। ईश्वर कोई कोरी कल्पना नहीं है; ईश्वर का अस्तित्व है, अत: उनको 'सत्' की संज्ञा दी गई है। ईश्वर शुद्ध चेतन स्वरूप है अर्थात् 'चित्' यानी चेतनता के द्वारा ईश्वर ब्रह्माण्ड की रचना और संचालन करता है। क्योंकि वही ईश्वर आनन्दमय है, अत: प्रतिक्षण 'आनन्द' में रहता है। ईश्वर के तीन प्रमुख गुण हैं : सत् (अस्तित्व), चित् (चेतन), और आनन्द। इन तीनों को मिलाने से सच्चिदानन्द शब्द की उत्पत्ति हुई है।

सत् (अस्तित्व), चित् (चेतन), और आनन्द अभिव्यक्त करने से ईश्वर को सच्चिदानन्द कहा जाता है। जीवित रहते हुए भगवान् को अनुभव करना संभव है। योगियों की पुण्य और शुद्धात्मा ने, समाधि- अवस्था में प्रभु- उपस्थिति के परमानन्द को अनुभव किया है।

प्रश्न-89. आत्मा क्या है और इसके कौन-से मुख्य गुण हैं ?

उत्तर : आत्मा के दो मुख्य गुण हैं- चेतनता और अस्तिता। वास्तव में आत्म का 'चेतन' होना ही अन्त:करण की शक्ति है। इसी शक्ति से शरीर जीवन की सभी क्रियाएँ निभाता है, इसलिए आत्मा का अस्तित्व है। आत्मा में निरन्तर आनन्द का भाव है। आत्मा के निरन्तर आनन्द में रहने की अवस्था को ही मोक्ष कहा जाता है। जैसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की आयु 31,15,36,00,00,00,000 वर्ष है, वैसे ही आत्मा भी 31,15,36,00,00,00,000 वर्ष तक मोक्ष के आनन्द को प्राप्त कर पुन: सृष्टि को लौट आती है।

प्रश्न-90. प्रकृति के प्रमुख गुणों का वर्णन कीजिए!

उत्तर : प्रकृति ही सृष्टि का भौतिक कारण है। पदार्थ द्वारा सृष्टि की रचना होती है और यह अणुओं के मिश्रणों से बनी है। पदार्थ में जीवन नहीं होता; इसका केवल एक ही गुण है -सत्ता। पदार्थ में न तो चेतना है और न ही आनन्द। प्रकृति स्वयं ही भौतिक रूप से विद्यमान है- अस्तिता/सत्ता बनाए रखने में सफल सिद्ध हुई है।

नोट : मीमांसा, वैशेषिक शास्त्र, न्याय शास्त्र, पतंजलि का अष्टांग योग, सांख्य शास्त्र, और वेदान्त-ये छः षड्दर्शन कहलाते हैं। दर्शन-शास्त्र के ये छ: अंग परस्पर सम्बन्धित हैं। इनमें से प्रथम पाँच प्रकृति अथवा अचेतन सत्ता और आत्मा अथवा पुरुष या चेतन सत्ता को शाश्वत अस्तित्वों के रूप में वर्णित करते हैं। पतंजलि के अष्टांग योग में भगवान् को पराचेतन, शाश्वत, धीमान्, प्रकृति और पुरुष दोनों के शासक रूप में वर्णित किया गया है।

वेद और सभी शास्त्र भगवान् को अवैयक्तिक और निराकार मानते हैं। अष्टांग योग के अध्ययन से पुरुष अथवा स्वयं को और सृष्टि-रचना के चरम कारण भगवान् को समझा जा सकता है। विशेषतया सांख्य शास्त्र के अध्ययन से अहं अथवा अहंकार को नियन्त्रित कर आत्म-ज्ञान प्राप्त करने को अग्रसर हो सकते हैं। तत्पश्चात् पुरुष के अस्तित्व को पहचानकर, अनुभव से आत्मज्ञान या आत्मानुभव के उद्देश्य को पूर्ण करके, व्यक्ति अष्टांग योग द्वारा भगवान् को समझ पाने के साथ-साथ प्रभु के अनन्त आनन्द की प्राप्ति इसी जीवन में कर सकता है।

प्रश्न-91. प्रकृति और प्रवृत्ति के भेद बताइए!

उत्तर : आध्यात्मिक अथवा सूक्ष्म अर्थ में प्रकृति स्वभाव की द्योतक है, जबकि प्रवृत्ति से तात्पर्य है-किसी व्यक्ति की जीवन-शैली, उसके झुकाव, उसके व्यसन, उसकी इच्छाएँ इत्यादि। प्रकृति के तीन आधारभूत गुण इस प्रकार हैं :

1. सात्त्विक : पवित्रता, शुद्धि, दया, करुणा, आत्मिक भव्यता आदि गुण सात्त्विक कहे जाते हैं।

2. राजसिक : निरुद्देश्य चलायमान व क्रियाशील रहना और अहम्मन्यता एवं ठाठ-बाट आदि राजसिक भावनाएँ हैं।

3. तामसिक : अशुद्धता, अहंभाव, दूसरों के प्रति द्वेष, स्वार्थ, ईर्ष्या, अशान्ति, अज्ञान, वैर-भाव, परनिन्दा, विनाशकारिता आदि आसुरिक दुर्भावनाएँ तामसिक कहलाती हैं।

प्रश्न-92. ज्ञान की क्या परिभाषा है ?

उत्तर : साधारण भाषा में जो हम सब जानते हैं, पहचानते हैं, और अनुभव करते हैं, उसे ज्ञान के नाम से सम्बोधित करते हैं। महर्षि पतंजलि-प्रणीत योगमार्ग के अन्तर्गत ज्ञान व कर्म दोनों महत्त्वपूर्ण हैं। महर्षि पतंजलि ने इनका उल्लेख क्रमशः वैराग्य व अभ्यास द्वारा किया है। वस्तुओं के यथावत् ज्ञान से ही वैराग्य उत्पन्न हो सकता है। योग-साधना का निरन्तर अभ्यास, कर्म के बल पर ही हो सकता है। योग-मार्ग के पथिक के लिए ज्ञान व

कर्म एक-दूसरे के पूरक हैं। गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं 'आत्मानुभव के लिए कर्मयोग व ज्ञानयोग मार्ग हैं।' निरन्तर अभ्यास ही कर्मयोग है और ज्ञानयोग ही वैराग्य उत्पन्न कराता है। ये दोनों व्यावहारिक मार्ग समस्त मानव-जीवन की महत्त्वपूर्ण भूमिका बनाते हैं। ज्ञान-मार्ग को सांख्य मार्ग भी कहा जाता है। सांख्यदर्शन में कपिल मुनि ने आत्मा, परमात्मा व प्रकृति के सूक्ष्मतम कणों का परिचय दिया है जिनसे पंचतत्त्व बनते हैं। परमात्मा, आत्मा और प्रकृति के संयोग से इस संसार की उत्पत्ति होती है। आगे दिए गए चित्र से उनके द्वारा बताए तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त होता है।
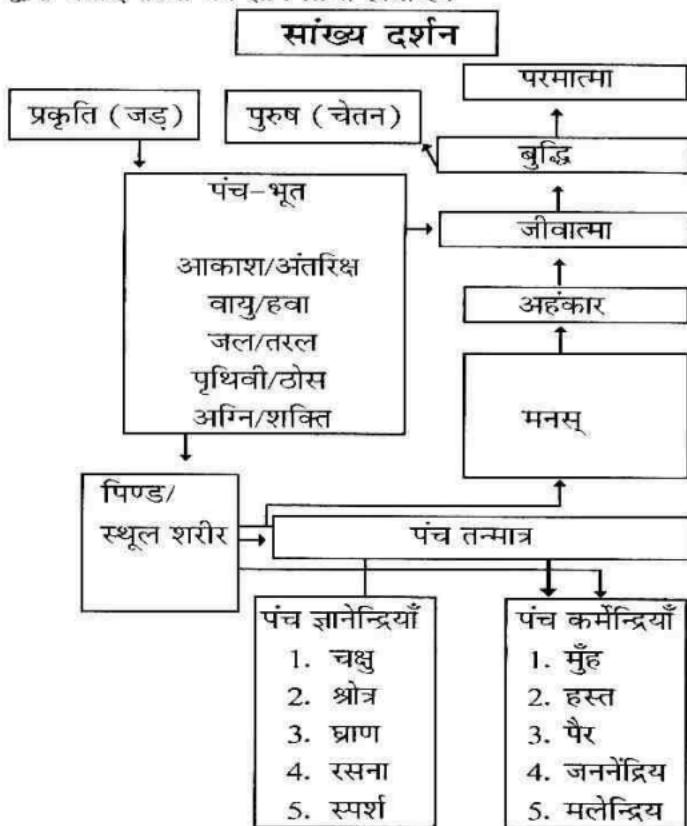
इन्द्रियाँ वे हैं जो मनस् से संयुक्त होती हैं, जैसे आँखें (नेत्र) इन्द्रियगोलक हैं, जबकि चक्षु तत्सम्बन्धी ज्ञानेन्द्रिय है।

तैत्तिरीय उपनिषद् परमात्मा और प्रकृति के पारस्परिक व्यवहार का वर्णन करता है—'प्रकृति और परमात्मा के संगम से भौतिक संसार की उत्पत्ति होती है। प्रकृति मूलभूत है। सर्वप्रथम अन्नमय कोष अर्थात् वनस्पति जगत् की उत्पत्ति होती है।'
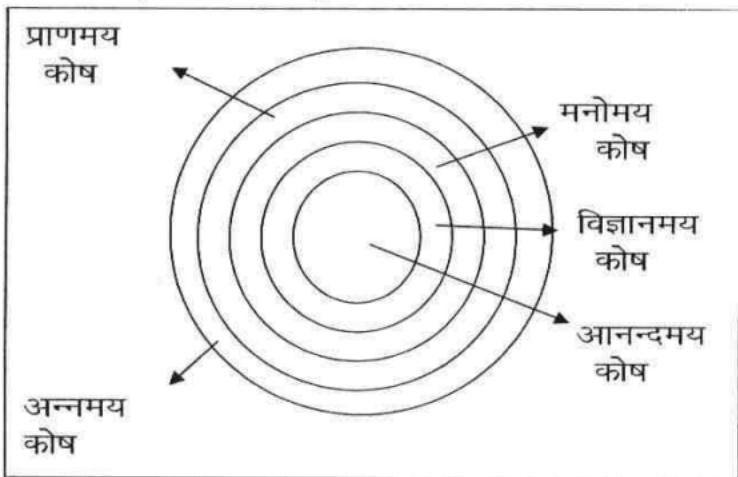
पाँच खोलों से ढका हुआ जीवात्मा

जब प्रकृति-तत्त्व और विकसित होता है, एवं 'प्राण शक्ति' का संचार शरीर में होता है तो 'प्राणमय कोष' की उत्पत्ति होती है—'जीव-जगत्' ही 'प्राणमय कोष' का रूप है। 'प्रकृति'-तत्त्वों के और अधिक विकास से मन का विकास—'मनोमय कोष' के रूप में होता है। 'प्रकृति' के अत्यधिक विकास के फलस्वरूप मानसिक क्रियाएँ भी उन्नत होती हैं जिससे तीन इकाइयों—आत्मा, परमात्मा और पदार्थ—के अन्तर अथवा भेद समझने की बुद्धि

प्राप्त होती है, जिसको ज्ञान कहते हैं। मन की इस अति उन्नत उत्तम अवस्था को ही 'विज्ञानमय कोष' कहते हैं। 'प्रकृति' के विकास की अन्तिम अवस्था 'आनन्दमय कोष' है; परम चेतन परमात्मा को आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा साक्षात् करके आनन्द की प्राप्ति करना ही मानव-जीवन का मुख्य लक्ष्य है।

परमात्मा ने विश्व में विभिन्न श्रेणियों के पदार्थ, वनस्पति-कोष से आरम्भ कर आनन्दमय कोष तक बना रखे हैं। पंचतत्त्व से बने जड़ पदार्थों में, जैसे मिट्टी, पानी, पत्थर आदि का मात्र अस्तित्व, अन्नमय कोष का ही है। पेड़-पौधे में अन्नमय के साथ प्राणमय कोष भी है। पशुओं में इन दोनों कोषों के अतिरिक्त मनोमय कोष भी है; उन्हें सुख-दु:ख की अनुभूति भी होती है। मनुष्यों में विज्ञानमय कोष भी है। मानव की बुद्धि सत्य व असत्य के भेद का विवेक रखती है। मानव योगमार्ग पर चलकर अपने-आपको आध्यात्मिक और दार्शनिक विकास के लिए तैयार कर लेता है, तब आनन्दमय कोष तक पहुँचने में भी समर्थ हो सकता है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार भगवान् ने सबसे प्रथम पुरुष और स्त्री देहों की रचना की। इस विचार की पुष्टि कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी, इंग्लैण्ड के प्रोफेसर हॉकिंग (1999) के इस कथन से होती है--'प्राकृतिक घटनाएँ निश्चित वैज्ञानिक नियमों के अनुसार होती हैं।' प्रोफेसर हॉकिंग और आगे कहते हैं कि 'पृथिवी पर जीवन का शीघ्र आगमन इस बात का द्योतक है कि अनुकूल परिस्थितियाँ होने पर जीवन के अनायास, स्वयं ही उत्पन्न होने की अच्छी सम्भावना होती है।' महर्षि दयानन्द इस सन्दर्भ में टिप्पणी करते हैं कि 'सृष्टि के आरम्भ में अनुकूल परिस्थितियाँ हिमालय में त्रिविष्टिप् (तिब्बत) में उपलब्ध थीं। महर्षि दयानन्द के अनुसार तिब्बत ही मानव-सभ्यता का उद्‌गम स्रोत है।

प्रश्न-93. व्यक्ति किस प्रकार से ईश्वर-प्राप्ति कर सकता है ?

उत्तर : पतंजलि के अष्टांग योग (देखें प्र॰ 66) में वर्णित 'ध्यान' के अभ्यास द्वारा प्रत्येक व्यक्ति इसी जीवन में ईश्वर-प्राप्ति कर सकता है।

यजुर्वेद कहता है कि व्यक्ति जीवित अवस्था में ही ईश्वर में लीन हो सकता है जैसा कि नीचे व्यक्त किया गया है :

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न वि चिकित्सति।।

—यजुर्वेद 40.6

सृष्टि के महान् रचयिता की अनुपम कृपा से कोई भी व्यक्ति सत्य और योग के अभ्यास से प्रभु की सार्वभौम उपस्थिति, अर्थात् उस महान् रचयिता की प्रत्येक रचना में सत्य-द्रष्टा का अनुभव करता है और उसके अनुरूप ही व्यवहार करता है। जिस व्यक्ति को ईश्वर की सार्वभौम उपस्थिति के विषय में संशय नहीं रहता, वह सम्यक् दर्शन अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम्।। —योगदर्शन 3.51

'अन्ततः बाधाओं को पार करने के पश्चात्, अज्ञान अथवा बन्धन का बीज दग्ध हो जाता है और योगी कैवल्य अर्थात् मुक्ति को प्राप्त कर लेता है।'

पतंजलि-योग आत्म-साक्षात्कार करने की एक विधि है। पतंजलि के अष्टांग योग के अभ्यास द्वारा आनन्ददायक ईश्वर-प्राप्ति इस जीवन में संभव है। यह अंतःकरण का ज्ञान, आत्मज्ञान अर्थात् आत्मसाक्षात्कार करने का एक रास्ता है जो कि ईश्वर-प्राप्ति की अवस्था को तैयार करता है।

आत्मा और परमात्मा
का विश्लेषण, पुरुषार्थ
के जीवन-लक्ष्य-धर्म,
अर्थ, काम और मोक्ष
की प्राप्ति का
व्यावहारिक दर्शन।
यथार्थ, सामान्यता,
अस्तित्व एवं
अस्तित्वहीनता,
पदार्थों की
अद्वितीयता, पदार्थ-
ह्रास, समय और
सृष्टि-रचना की
समालोचना
ईश्वर, आत्मा
प्रकृति और
उनके
सिद्धान्तों का
गूढ़ विवेचन
मीमांसा
वैशेषिक
न्याय
षड्दर्शन
वेदान्त
सांख्य
पतंजलि का
अष्टांग योग
ब्रह्म तत्त्व का
विवेचन :
निराकार, निरपेक्ष
और परम
रचयिता ब्रह्म ही
ब्रह्माण्ड का
नियन्ता,
अधिष्ठाता व मूल
रचयिता है।
पुरुष, आत्मा
परमात्मा और
प्रकृति (जड़
जगत्) का
यथावत् ज्ञान
ईश्वर और
आत्मा का
साक्षात्कार,
परम तत्त्व की
प्राप्ति का अपूर्व
व व्यावहारिक
मार्ग

प्रश्न-94. क्या हिन्दुओं के लिए अवतार अर्थात् भगवान् का मनुष्य-रूप में पृथिवी पर आना एक वास्तविकता है ?

उत्तर : हिन्दू धर्म का प्रमुख ग्रन्थ वेद है। वेदों में स्पष्ट उल्लेख है कि परमात्मा अकाय अर्थात् कायारहित है, अतः प्रभु का मनुष्य-शरीर धारण करना अथवा भगवान् का अवतार लेना केवल एक भ्रांति ही है, इसमें कोई सचाई नहीं है। ब्राह्मण-ग्रंथ, उपनिषद्, आरण्यक, शास्त्र, स्मृति आदि प्रमाणित धर्म-ग्रन्थों में अवतार के सिद्धान्त का कोई भी उल्लेख नहीं है। ईश्वर सर्वव्यापक है। यदि भगवान् का कुछ भाग या अंश मनुष्य का रूप धारण कर लेता है, तो ईश्वर सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, और सर्वदर्शी नहीं हो सकते। केवल आत्मा ही जीव का रूप धारण करती है। ईश्वर आत्मा नहीं है, ईश्वर आत्मा से परे—परमात्मा, अजन्मा, अजर और अमर है। जो लोग ईश्वर के इस शुद्ध स्वरूप को नहीं जानते, 'भगवान्' के गुणों को नहीं समझते, वे ही अवतारवाद को प्रोत्साहन देते हैं। अवतारवाद उन लोगों की अज्ञानता का प्रतीक है, जो अपनी आशा और मनोकामनाओं को जीवित रखने हेतु कपोल-कल्पनाओं का सहारा 'अवतारवाद' से लेते हैं।

अवतारवाद का सिद्धांत परमात्मा की परिभाषा के प्रतिकूल है और यह ईश्वर के प्रति कृतघ्नता ही नहीं अपितु अन्याय ही दर्शाता है। अवतारवाद मनुष्य के मस्तिष्क की उपज है, जो असुरक्षा की भावनाओं को दबाने में सहायक होती है। अवतारवाद के सिद्धान्त ने हिन्दुओं को कमज़ोर बनाने में बहुत बड़ा भाग अदा किया है। बाहरी आक्रमणकारियों ने जब मंदिरों, शिक्षण-संस्थाओं और दुर्गों को तोड़ा, तब अवतारवाद के समर्थक भगवान् की प्रतीक्षा में हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे, हारते रहे, बर्बाद होते रहे। उनकी गर्दनें कटती रहीं, पर उनके भगवान् अवतार लेकर उन्हें बचाने नहीं आए! अवतारवाद स्वयं की जिम्मेदारियों को दूसरों पर थोपना सिखलाती है, अतः यह विचारधारा अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारने

के समान त्याज्य है। अवतारवाद ने ही दूसरों पर निर्भर होने की वृत्ति को जन्म दिया है। जो लोग पुरुषार्थ करते हैं, वे ही अपने उद्देश्यों में सफल होते हैं। पुरुषार्थ या परिश्रम ही एकमात्र ऐसा साधन है जिसके द्वारा व्यक्ति अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकता है; अवतारवाद और भाग्यवाद के द्वारा कदापि नहीं।

भविष्य की अनिश्चयता को दूर करने और आशा की किरण की कल्पना करने हेतु ही 'अवतार–कि कोई आकर हमें दुर्गति से तारेगा' का विकार विवेकहीन, कर्महीन मनुष्यों ने उत्पन्न किया। शिरोमणि भारत देश को 'अवतारवाद' ने अकर्मण्यता में ढकेल दिया, जिससे भारत अब तक भी अपनी पूर्व अवस्था में नहीं आ सका।

प्रश्न-95. क्या हिन्दू मूर्ति-पूजा (Idol worship) करते हैं ?

उत्तर : दी अमेरिकन हैरिटेज डिक्शनरी के अनुसार 'मूर्ति' का अर्थ है : एक झूठा भगवान् (Idol, false god)। अत: हिन्दू 'झूठे भगवान्' की पूजा नहीं करते। यजुर्वेद ने स्पष्ट शब्दों में कहा है :

न तस्य॑ प्रति॒मा ऽ अ॑स्ति॒ यस्य॒ नाम॑ म॒हद्यश॑:।
हि॒र॒ण्य॒ग॒र्भ ऽ इत्ये॒ष मा मा॑ हि॒ꣳसीदित्ये॒षा
यस्मा॒न्न जा॒त ऽ इत्ये॒ष:।। —यजुर्वेद 32.3

'जिस भगवान् का यश सबसे महान् है, उसकी कोई प्रतिमा या मूर्ति नहीं। ईश्वर सभी प्राणियों का स्रष्टा है, वह सभी ज्योतिर्मय वस्तुओं का जीवनाधार है। उस अजन्मा सर्वव्यापक भगवान् से अधिक शक्तिशाली कोई नहीं। केवल भगवान् ही पूजनीय है।'

उपनिषद् भी प्रभु के गुणों का वर्णन करते हैं :

न तस्य कश्चित्पतिरस्ति लोके,
न चेशिता नैव च तस्य लिंगम्।
स कारणं करणाधिपाधिपो,
न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिप:।।

—श्वेताश्वतर उपनिषद् 6.9

'उस परमात्मा का न कोई पति है, न कोई शासनकर्ता, न कोई चिह्न है। परमात्मा ही इस जगत का निमित्त कारण है। वह इन्द्रियकरणों के स्वामी जीवात्मा का भी स्वामी है, वह किसी से न उत्पन्न है, और न उसका कोई स्वामी है।'[1]

क्योंकि भगवान् निराकार, निर्गुण और अनगिनत गुणों वाले हैं, अतः साधारण मानव-मन बगैर पुरुषार्थ या परिश्रम के प्रभु को समझ नहीं पाता, इसलिए हिन्दुओं ने परमात्मा के विभिन्न गुणों को विभिन्न देवताओं के रूप में ढाल लिया है। उदाहरण के लिए ब्रह्मा अनन्त सृष्टि के स्रष्टा हैं, विष्णु सर्वव्यापक सृष्टि के रक्षक हैं और शिव सृष्टि के कल्याणकारक या पुनर्निर्माण करनेवाले हैं। जो लोग भगवान् के सच्चे स्वरूप को समझ नहीं पाते, वे ही अंधविश्वास के कारण प्रभु के कुछ गुणों से युक्त देवताओं की मूर्तियाँ बनाकर उनकी पूजा करते हैं। परमात्मा सर्वव्यापक है तो उसकी मूर्ति बनाना और उस मूर्ति की पूजा करना परमात्मा का निरादर करना ही है। देवता भगवान् के कुछ ही गुणों को दिखा सकते हैं। साधारणतया हिन्दू लोग पूजा के समय ध्यान लगाने, मन को एकाग्र करने, या भगवान् के विभिन्न गुणों का आंशिक रूप से प्रतिनिधित्व करने हेतु अलंकृत मूर्तियों का प्रयोग करते हैं, जबकि कोई भी देवता भगवान् नहीं है, और हो भी नहीं सकता। इसीलिए अधिकतर हिन्दू लोग भी मूर्तियों तक ही सीमित न रहकर प्रार्थना, स्तुति, और ध्यान द्वारा परम ब्रह्म परमात्मा की उपासना करने में पूर्ण स्वतंत्र हैं। हिन्दू ध्यान तथा उपासना से अनादि-अनंत ईश्वर के अनुपम आनन्द का अनुभव हृदय में करता है, परन्तु क्रिश्चियन लोग 'जीसस क्राइस्ट' तक ही सीमित रहकर प्रभु-प्राप्ति से वंचित ही रह जाते हैं।

----

1. सुश्री सूर्या देवी चतुर्वेदा, आचार्या 'पाणिनि कन्या महाविद्यालय, वाराणसी', टंकारा समाचार, ऋषि बोधांक, मार्च 2005, पृष्ठ 59 ।

दोहरी रणनीति में निपुण क्रिश्चियन लोग अपनी मूर्तियों को Icon/आईकोन अथवा Deity/देवता कहते हैं, पर हिन्दुओं की मूर्तियों को तिरस्कृत रूप से Idol/false god/'झूठा भगवान्' कहकर निन्दा करते हैं। Brain wash technique के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को भी वे यही सिखाते हैं कि हिन्दू लोग 'Idol worshippers'/'झूठे भगवान्' के 'झूठे भक्त' हैं, अत: इनका उद्धार करने हेतु 'जीसस क्राइस्ट' की शरण में लाओ अर्थात् इन्हें क्रिश्चियन बनाओ।

जगप्रसिद्ध आधुनिक समाज-सुधारक महात्मा जैसे गुरु नानक, दादू, कबीर, राजा राममोहन राय, महर्षि दयानन्द सरस्वती, स्वामी श्रद्धानन्द, स्वामी ब्रह्मानन्द, योगी श्री अरविन्द आदि संतों ने मूर्ति-पूजा के विरुद्ध खुल्लमखुल्ला विचारों को व्यक्त किया। 'बसवेश्वर लिंगायत' महात्मा का कथन है कि भगवान् के सिवाय कोई देवता नहीं हैं। तमिल योगी शिवक्कीयर, तमिल कवि महात्मा थायुमानवर, और तमिल आचार्य माणिक्कवाचकर इत्यादि महान् भक्तों ने सभी पत्थर और धातुओं से बनी वस्तुओं की, भगवान् या उनके प्रतिनिधि समझकर उनकी पूजा करने की कड़ी निंदा की है।

आदि शंकराचार्य और वैष्णव महात्मा माधवाचार्य ने छांदोग्य उपनिषद् पर लिखे गए विश्लेषण में निर्जीव वस्तुओं की पूजा पर कड़ी आपत्ति की है। उन्होंने कहा—भगवान् की बजाय निर्जीव वस्तु की पूजा करने से कोई सुख-शान्ति नहीं मिलती।

वैष्णव महात्मा स्वामी ब्रह्मानन्द ने भी मूर्तिपूजा की निन्दा की है। वे पुष्कर नगर, राजस्थान में एक सौ पचास वर्ष पहले उत्पन्न हुए थे। दीप माधव आश्रम, ग्राम जाटन, राजस्थान के अस्सी-वर्षीय महात्मा स्वामी माधवानन्द, विश्व में धर्म-प्रचारार्थ हेतु जब जून 1999 में एटलान्टा, अमेरिका में आए थे, तब इस विषय पर बड़े चाव से स्वामी ब्रह्मान्द के द्वारा रचित भक्ति-गीत भी गाए थे।

प्रश्न-96. 'वैदिक-सनातन-हिन्दू' धर्म के मुख्य तत्त्व कौन से हैं ?

उत्तर : 'वैदिक-सनातन-हिन्दू' धर्म के मुख्य तत्त्व निम्न-लिखित हैं :

1) परमात्मा केवल एक ही है, वही सृष्टि का रचयिता और कर्त्ता-धर्त्ता है, वही पूजा के योग्य है।

2) 'वेद' सभी सत्य ज्ञान के-भौतिक और आध्यात्मिक ज्ञान के स्रोत हैं। भगवान् द्वारा मानव-समाज को प्रदत्त 'वेद' दिव्य ज्ञान के उपहार हैं।

3) मानव-जीवन का उद्देश्य है-सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, शाश्वत परमात्मा को पाना अर्थात् प्रकृति की सहायता से आत्मा और परमात्मा का मिलन। आत्म-ज्ञान की प्राप्ति हेतु निम्नलिखित परस्पर सम्बन्धित क्रियाएँ संक्षेप में अपेक्षित हैं :

   1. **यज्ञ :** सामाजिक और हितकारी, पवित्र-प्रयत्न अथवा कार्य को सर्वव्यापी ईश्वर के समर्पित करना यज्ञ कहलाता है। **साधारणतया त्याग की भावना ही यज्ञ का प्रतीक है।**

   2. **धर्म :** भक्ति, लगन, ज्ञान और **स्वार्थ-हीन भावना से जो निष्काम कर्त्तव्य** किया जाता है, वह धर्म कहलाता है।

   3. **कर्म :** निःस्वार्थ समाज-सेवा अर्थात् मानवता की सेवा ही निष्काम कर्म है। निःस्वार्थ सेवा का अर्थ ही **निष्काम कर्म** है। योगीराज श्रीकृष्ण ने गीता 3.14 में निष्काम कर्म की **'यज्ञकर्मसमुद्भवः'** के रूप में व्याख्या की है अर्थात् यज्ञ का उद्भव ऐसे निष्काम कर्म से हो, जो सभी के कल्याण की कामना से किया जाता है।

4. **योग** : अष्टांग योग द्वारा मन और शरीर को अनुशासित करके मनुष्य आत्मा के विकास की उच्चतम अवस्था तक पहुँचता है। आत्मा और परमात्मा का मिलन 'योग' है। इसी को समाधि की अवस्था कहते हैं।
5. **मोक्ष** : मोक्ष का अर्थ है : शरीर के बन्धनों से, सर्व इच्छाओं से मुक्ति। इच्छाओं से मुक्ति पाने के पहले 'काम' अर्थात् स्वभावगत इच्छाओं को जानना आवश्यक है। जीवन की यात्रा में मनुष्य को धर्म और अर्थ अर्जन करने के लिए विशेषतया पुरुषार्थ करना पड़ता है। पुरुषार्थ से ही सही मार्गों/कार्यों द्वारा धन कमाया जाता है, ताकि इच्छाओं की पूर्ति हो सके। जब कोई व्यक्ति अपनी स्वाभाविक इच्छाओं को पूरा कर लेता है तो इच्छाओं पर नियन्त्रण करने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। इसके लिए व्यक्ति को जीवन-यात्रा के चार पड़ाव पार करने पड़ते हैं–ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम। समाज के चारों वर्णों को, जीवन के चार आश्रमों अथवा जीवन–यात्रा के चार पड़ावों में से निकलना होता है। जो व्यक्ति पंच महायज्ञ अथवा पंच महाकर्म, तथा चार मूल नियमों–यज्ञ (त्याग), धर्म (तप), कर्म (निःस्वार्थ सेवा) अथवा निष्काम कर्म, पातंजल योग (अष्टांग योग) द्वारा समाज के प्रति अपने सर्वोच्च कर्तव्य को निभाता है, वह मानव-जीवन के अन्तिम ध्येय मोक्ष को प्राप्त कर सकता है और बार–बार जन्म लेने तथा मरने के बन्धन–चक्र से छूट जाता है।
6. **पुनर्जन्म** : जीवात्मा का शरीर से छूट जाने के बाद

जन्म लेना, पुनर्जन्म कहलाता है। व्यक्ति पतंजलि के योग द्वारा इस जीवन में ही मुक्त हो सकता है और जन्म-मरण के चक्कर से छूट सकता है।

4) **यज्ञ, धर्म, निष्काम कर्म, और अष्टांग-योग** द्वारा कोई भी मनुष्य बिना किसी और की मध्यस्थता अथवा बिचोलिये के मोक्ष या निर्वाण प्राप्त कर सकता है। अन्य 'मत'-मज़हब वाले मानते हैं कि पीर-पैगम्बर 'मुहम्मद' और रिलिजन वाले 'ईशु पुत्र-जीसस क्राइस्ट' के बिना कोई स्वर्ग नहीं जा सकता-यह केवल एक भ्रांति ही है जो मनुष्य को गुमराह ही करती है।
5) **इस जीवन में ही भौतिक और आध्यात्मिक ज्ञान के उचित मिश्रण से मोक्ष या निर्वाण प्राप्त करना सम्भव है।**
6) **विचारों की स्वतंत्रता हिन्दू धर्म में सम्भव है** क्योंकि सहनशीलता, सहिष्णुता, और शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व सबको समान रूप से प्राप्त है।
7) **समस्त विश्व एक परिवार है। यजुर्वेद 11-5 का वचन है: शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः।** इसका अर्थ है कि सभी व्यक्ति अमृत के समान प्रभु के प्यारे पुत्र हैं अर्थात् सभी के अधिकार समान हैं।

इसी कारण से वैदिक-सनातन- धर्म ने कभी भी किसी अन्य संस्कृति, सभ्यता, मत-मज़हब याने रिलिजन इत्यादि पर धर्म के नाम पर आक्रमण नहीं किया और उनकी संस्कृति, सभ्यता, मत-मज़हब याने रिलिजन को नष्ट कर अपने में नहीं मिलाया, जैसे कि अन्य 'मत'-मज़हब याने रिलिजन वाले लोगों ने किया और अब भी खुल्लमखुल्ला कर रहे हैं।

प्रश्न-97. किस प्रकार के व्यक्ति को हिन्दू माना जा सकता है ?

उत्तर : साधारणतया कोई भी व्यक्ति अगर अग्रलिखित सिद्धांतों का पालन करता है तो उसे हिन्दू कह सकते हैं :

1. **ईश्वर या परमात्मा**—समस्त सृष्टि के रचयिता और कर्त्ता-धर्त्ता हैं। ईश्वर ही निराकार, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, सर्वशक्तिमान्, अनुपम, सर्वाधार, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक हैं। सबसे बड़े कृपालु सच्चे परमात्मा हैं। उस **परमात्मा का मुख्य नाम ओ३म् है।**
2. **वेद**—सभी ज्ञान-आध्यात्मिक, भौतिक आदि **के मुख्य स्रोत चार वेद हैं जो कि ईश्वरीय ज्ञान हैं।**
3. **यज्ञ** का मुख्य व्यावहारिक रूप है—**'अनवरत विशुद्ध सर्वकल्याणकारी'** त्याग या प्रयत्न। **प्रभुप्राप्ति के लिए यज्ञ प्रथम चरण है।**
4. **धर्म** व्यक्ति के मूल कर्तव्यों और दायित्वों को इंगित करता है। व्यक्ति का स्वयं के प्रति तथा परिवार, मित्रों, समाज और संसार के प्रति क्या दायित्व है—इस ज्ञान की प्रेरणा यज्ञ देता है कि ताकि **परमात्म-प्राप्ति के लिए आत्मज्ञान का अनुभव** हो सके।
5. **निष्काम-कर्म** का सिद्धान्त मनुष्य को अन्तिम रूप-रेखा प्रदान करता है। यज्ञ और धर्म व्यक्ति के कर्मों के माप-दंड हैं। परन्तु **निष्काम कर्म** ही मनुष्य के अगले जन्म को निश्चित करता है।
6. **पंच महायज्ञ** अर्थात् ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, बलिवैश्वदेवयज्ञ, अतिथियज्ञ (तैत्तिरीय उपनिषद् देखें उ॰ 51) के सिद्धान्त यज्ञार्थी तथा अन्य लोगों के जीवन को श्रेष्ठतर बनाते हैं। **पंच महायज्ञ का दैनिक पालन करना प्रत्येक व्यक्ति का मुख्य कर्तव्य है। इससे स्वयं का तथा समाज का उत्थान होता है।**
7. **पुनर्जन्म** का सिद्धान्त मनुष्य के कर्म, धर्म और यज्ञ द्वारा निर्धारित एक महान् सत्य है।
8. **योग** के यम-अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह;

तथा नियम-शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान के पालन से आत्म-बल मिलता है, जीवन पवित्र होता और सही लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है। 'भगवान् की भक्ति, सहिष्णुता, और शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व' अहिंसा के सिद्धान्तों की ही उपज हैं। **इन सिद्धांतों पर चलने से विश्व का एकमात्र सार्वभौमिक परिवार देखने का सपना साकार होता है,** अर्थात् समस्त विश्व एक विशाल परिवार बन सकता है। यदि व्यक्ति, कुटुम्ब, समाज, और राष्ट्रों के स्तर पर आपसी तालमेल या समन्वय हो सके तो परमात्मा में लीन होने के परम लक्ष्य की प्राप्ति सब को हो सकती है। यम व नियम के अतिरिक्त मनुष्यों को योग के अन्य छः अंगों—आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि का भी निरन्तर अभ्यास करने से दैनिक जीवन में शान्ति प्राप्त होती है।

9. **धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष की प्राप्ति ही मनुष्य-जीवन का उद्देश्य है।** इसका दैनिक जीवन में अर्थ है 'मनुष्य-जीवन उचित ढंग से जिया जाए, जीविका-उपार्जन समुचित-साधनों से हो, जीवन का आनन्द नैतिकता के आधार पर लिया जाए और जीवन की सभी आकांक्षाएँ नैतिक मूल्यों पर आधारित हों। इच्छाओं को संयत करके ही परमानन्द, परम शान्ति, और जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति प्राप्त होती है। इस प्रकार इसी जीवन में कोई भी मनुष्य बगैर किसी पीर-पैगम्बर-'मुहम्मद' की मध्यस्थता के, अथवा 'ईशु पुत्र-जीसस क्राइस्ट' जैसे प्रभु के एजेन्टों के, अर्थात् बिना किसी बिचौलिये के, मोक्ष या निर्वाण प्राप्त कर सकता है।

10. **व्यक्ति के सर्वांगीण विकास तथा उत्तम मानव बनने के**

लिए संस्कारों के सिद्धांतों पर आचरण करें। देहावसान के पश्चात् दाह-संस्कार करने से पंचतत्त्वों से निर्मित शरीर प्रकृति के पंचतत्त्वों में विलीन हो जाए।

प्रश्न-98. उन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदानों के नाम दीजिए जो 'वैदिक/सनातन' धर्म द्वारा आधुनिक संसार के निर्माण में सहायक सिद्ध हुए हैं।

उत्तर : मानव-कल्याण के लिए 'वैदिक-हिन्दू-सनातन' धर्म द्वारा अगणित योगदान दिए गए हैं। उनमें से कुछ निम्न-लिखित हैं :

1. स्वतन्त्रता का सदुपयोग :

1. प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी की मध्यस्थता के नैतिक साधनों द्वारा स्वतन्त्रता या मुक्ति प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार है।
2. धार्मिक स्वतन्त्रता प्रत्येक व्यक्ति का जन्म-सिद्ध अधिकार है। जब व्यक्ति शारीरिक, सामाजिक, भावनात्मक, आध्यात्मिक रूप से स्वतन्त्र है, तभी मुक्ति की प्राप्ति होती है। व्यक्ति यदि दूसरों की धार्मिक रीतियों में हस्तक्षेप नहीं करता और न ही उनके धार्मिक विश्वासों को चोट पहुँचाता है, तो सभी अपने-अपने ढंग से पूजा करने के लिए स्वतन्त्र हैं।
3. सब प्रकार की इच्छाओं से मुक्त होकर ही आध्यात्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त की जा सकती है जिसे मोक्ष या निर्वाण कहा जाता है। प्रत्येक मनुष्य में ऐसी शक्ति निहित है। यदि वह चाहे तो मोक्ष प्राप्त कर सकता है, और अपनी इस इच्छा को पुरुषार्थ द्वारा पूर्ण कर सकता है।

2. विज्ञान और धर्म का समन्वय :

भौतिक और आध्यात्मिक विज्ञानों का समन्वय 'वैदिक-सनातन-हिन्दू' धर्म का एक आधारभूत अंग है। वेदों की इस अनुपम

विशेषता की झलक 'योग' और 'आयुर्वेद' में बड़ी स्पष्टता से मिलती है। प्राचीन विद्वानों और ऋषियों द्वारा शून्य और 'बाइनरी पद्धति' की जो परम्परा गणित को दी गई है, वे आधुनिक समय में कम्प्यूटर-प्रणाली के आधार बन गए। अरब देश के लोगों ने भारतीय ऋषियों से 'शून्य' जैसी अद्वितीय संख्या में पारंगत होकर पश्चिम के देशों को गणित का ज्ञान उपलब्ध कराया। वैदिक विद्वानों के इन उपहारों द्वारा ही आधुनिक संसार इक्कीसवीं शताब्दी के 'साइबर' युग में प्रवेश कर सका है।

प्रश्न-99. 'वैदिक-हिन्दू-सनातन' धर्म विश्व को क्या दे सकता है ?

उत्तर : 'वैदिक-हिन्दू-सनातन' धर्म प्राचीन काल से ही विश्व को मूल्यवान् अन्तर्दृष्टि, अन्तर्ज्ञान देता रहा है, इसलिए सहस्रों वर्षों के उतार-चढ़ाव को झेलकर आज भी जीवन्त और सशक्त है। संसार को 'वैदिक-हिन्दू-सनातन' धर्म ने कई योगदान दिए हैं, मुख्य निम्न हैं :

1. **सहनशीलता :** शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व। अष्टांग योग के सिद्धान्तों की देन है सह-अस्तित्व और सहनशीलता। इस सिद्धान्त ने विश्व को कई उपहार दिए हैं, जैसे :
   1. संसार में भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ सभी धर्मों का समन्वित अस्तित्व है और प्राचीनकाल से ही सभी धर्मों को फलने-फूलने और उन्नत होने के समान अवसर मिले हैं।
   2. भारत ने सदा पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता का समर्थन किया है और किसी भी धर्म के अनुयायियों पर किसी प्रकार के हानिकारक नियन्त्रण नहीं लादे।
   3. पर्यावरण और वनस्पति की रक्षा होने के कारण भारत में तरह-तरह के पेड़-पौधे, फूल और जीव-जन्तु फल-फूल रहे हैं, जबकि दूसरे देशों में बहुत-सी प्रजातियाँ

लुप्त हो गई हैं।

4. भारत द्वारा विदेशी विचारधाराओं, सभ्यताओं, विदेशी मूल के निवासियों और विभिन्न जीवन–शैलियों के प्रति सद्‌भावना, सदाशयपूर्ण सहनशीलता आज भी विद्यमान तथा जग–प्रसिद्ध है।
5. भारत की जनतान्त्रिक प्रणाली और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता सर्वविदित है।
6. **भारतीय सदा से 'जियो और जीने दो' के आदर्श का पालन करते आए हैं।** संसार के इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण नहीं जब हिन्दुओं ने दूसरे धर्मों को हानि पहुँचाई हो या उनके अनुयायियों के प्रति हिंसात्मक कार्य, आक्रमण या युद्ध आदि किए हों। हिन्दू सदा से दूसरे धर्मों के प्रति पूर्णतया सहनशील रहे हैं। अहिंसा का सिद्धान्त उन्हें न केवल मानव–जाति के प्रति, बल्कि विश्व के सभी पेड़–पौधों और जीव–जन्तुओं के प्रति भी हिंसा करने से रोकता है। भारत एक ऐसा देश है, जहाँ जलवायु के परिशोधन के लिए पेड़ों की भी श्रद्धा से देखभाल होती है। शाकाहारी भोजन, तथा दैनिक कार्य–व्यवहार में उनके 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के आदर्श के स्पष्ट दर्शन होते हैं।
7. **स्त्री–समुदाय को 'जगदम्बा' अथवा 'माँ' से सम्बोधित करनेवाला विश्वभर में केवल एक हिन्दू धर्म ही है।** सम्पूर्ण स्त्री–समाज को आदर की दृष्टि से प्रस्तुत करने का रास्ता भी हिन्दू धर्म ही जानता है, इसी कारण हर नगर, हर ग्राम में एक देवी का मंदिर मिलता है, ताकि हर हिन्दू 'परस्त्री' को 'माँ' अथवा 'बहन' समझकर दैनिक जीवन में इस विचारधारा को पोषित करे। **केवल 'वैदिक–हिन्दू–सनातन' धर्म को माननेवाले ही 'परस्त्री**

को 'माँ' अथवा 'बहन' कहकर पुकारते हैं।

2. **ज्ञान–विवेक :** सामान्यत: परमात्मा, आत्मा और प्रकृति–विषयक ज्ञान को लेकर वैचारिक भिन्नता पाई जाती है। अत: इनके बारे में वास्तविक ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है–'आत्म–ज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् ही यज्ञ, धर्म, कर्म और योग के दर्शन' का दैनिक जीवन में पालन हो सकता है। भौतिकता और आध्यात्मिकता के मिश्रण द्वारा ही भगवान् से साक्षात्कार होता है। **'भौतिकता और आध्यात्मिकता में समन्वय' वैदिक–हिन्दू– सनातन धर्म की ही देन है।**
3. **स्वस्थ, चिन्तामुक्त जीवन :** दीर्घायु के लिए दैनिक जीवन स्वस्थ और चिन्ता के भार से मुक्त होना चाहिए। ऐसा केवल 'पातंजल योग' की शिक्षाओं पर चलने से सम्भव है। इसके द्वारा 'मृत्यु' को भी अधिक अच्छी तरह से समझा जा सकता है और योगी स्वेच्छानुसार इस संसार से विदा लेते हैं।
4. **जीवन का ध्येय :** व्यक्ति का शारीरिक, सामाजिक और भावनात्मक विकास जीवन के चारों भागों में निरन्तर होता रहता है। भौतिक संसार में सुख से रहने के लिए जीविकोपार्जन नैतिक सिद्धान्तों पर चलकर करने से मानसिक शांति बनी रहती है। भविष्य में आध्यात्मिक ज्ञान के परिवेश में रहने के कारण इच्छाओं का दमन सम्भव है। सामान्यत: लोग मृत्यु का वरण शालीनता और स्वाभिमानता के साथ करते हैं। शुद्ध शाकाहारी जीवन–शैली, शरीर की जीवाणुओं से लड़ने की शक्ति को बढ़ावा देकर, समाज में व्याप्त 'औषधि निर्भरता' को कम करती है, ताकि समाज को रोगों और दु:खों से मुक्त रखा जा सके। केवल स्वस्थ, सुखी, दीर्घ जीवन की कामना ही नहीं, अपितु स्वस्थ–सुखी–दीर्घ जीवन–यापन करना सम्भव भी है।

प्रश्न-100. भगवान् की कृपा, प्रेरणा और आशीर्वाद को पाने के लिए प्रार्थना कैसी हो ?

उत्तर : किसी भी कार्य को शुरू करते समय, प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर के गुणों का ध्यान करने के लिए तीन बार 'ओ३म् तत् सत्' का उच्चारण करे, अर्थात् 'हे सर्वशक्तिमान्, दयालु, सर्वान्तर्यामी ईश्वर! आप सत्य हैं, आप चेतन हैं, हम आपकी उपस्थिति को अनुभव करते हैं।' भगवान् की कृपा, प्रेरणा और आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए कुछ देर नित्य सब ओर से मन हटाकर ईश्वर में एकाग्र-चित्त होना आवश्यक है। परमेश्वर के गुणों का वर्णन जिन मन्त्रों या वाक्यों में किया गया है उनका जप करना, ईश्वर के मुख्य नाम ओ३म्-'ओ३म् तत् सत्' का उच्चारण मंगलमय और शांतिदायक है।

नोट : किसी भी शुभकर्म को आरम्भ करते समय ओ३म् का भक्ति से शांतिपूर्वक और प्रेमपूर्वक उच्चारण करें। इसी प्रकार कार्य-समाप्ति पर 'ओ३म् स्वस्ति' तीन बार कहें। यह अपने और सबके कल्याण की साधारण प्रार्थना है।

आज भी इण्डोनेशिया ('बाली') के हिन्दू लोग 'ओ३म् स्वस्ति' का तीन बार प्रेमपूर्वक जाप प्रत्येक कार्य की सफलता के लिए करते हैं।

2

दैनिक पारिवारिक प्रार्थनाएँ

परिवार के सभी सदस्य मिलकर शांति व समृद्धि के लिए प्रतिदिन दो बार प्रार्थना करें। दैनिक प्रार्थनाओं के माध्यम से परिवार के सदस्यों में विनम्रता और निष्ठा, मैत्री और समर्पण–भाव के साथ–साथ अनुशासन भी बढ़ता है। इसके अतिरिक्त परिवारजनों में पारस्परिक स्नेह, सद्भाव और सम्मान की वृद्धि होती है। आगन्तुक, अतिथि, सभी परिवार–जनों, बच्चों, सेवकों और वृद्धों सहित किसी सुविधाजनक स्थान पर एकत्रित हो जाएँ। शुद्धिकरण के पश्चात् प्रत्येक व्यक्ति नियत समय पर प्रार्थना की स्थिति में अर्थात् दोनों हाथ जोड़ नमस्ते की तरह करबद्ध मुद्रा में सीधे बैठें। एक सूत/रुई की बाती से बना घी का दीपक जलाएँ, तत्पश्चात् शांति, सुरबद्धता तथा निष्ठाभाव से निम्न प्रार्थनाओं का जाप करें।

प्रत्येक व्यक्ति श्रद्धापूर्वक दैनिक जप से प्रार्थनाओं को स्वत: ही कण्ठस्थ कर सकता है। शीघ्र स्वास्थ्य–लाभ के लिए निम्नलिखित कल्याणकारी प्रार्थना का जाप भी किया जा सकता है:

नित्य प्रार्थनाएँ

सामर्थ्यवान् बनने की कामना :

1. ओ३म् तेजोऽसि तेजो मयि धेहि,
वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि,
बलमसि बलं मयि धेहि।
ओजोऽस्योजो मयि धेहि,
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि,
सहोऽसि सहो मयि धेहि।।

–यजुर्वेद 19.9

परम पूज्य भगवन्। आप अनंत ज्ञान के दिव्य प्रकाश से अलंकृत सर्वोच्च तेजधारी हो। हमें भी इस मेधावी ज्ञान से अलंकृत करो। सर्वशक्तिमान्! हमारे अन्दर शक्ति व शौर्य भर दो। सर्वश्रेष्ठ आपकी शक्तियाँ अनन्त हैं, हमें ओजस्वी व शक्तिशाली बनाइए। सभी शक्तियों तथा पुरुषार्थ के अधीश्वर! हमारे अन्दर बुराइयों से लड़ने के लिए उत्साह व आत्मबल का संचार कीजिए तथा हमें सन्मार्ग का अनुसरण करते रहने के लिए सामर्थ्यवान् बनाइए।

गायत्री मंत्र :

2. **ओ३म् भूर्भुवः स्वः।**
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्।। –यजुर्वेद 36.3

हे परमेश्वर! आप प्राणस्वरूप, दुःखहर्ता, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सुखस्वरूप, सर्वशक्तिमान्, सृष्टि-रचयिता और सर्वपालक हैं। हम आपके शुद्ध विज्ञानमय, वरणीय, दिव्य ज्योतिःस्वरूप का ध्यान करते हैं। आप कृपया हमारी बुद्धि को सन्मार्ग की ओर प्रेरित कीजिए।

ईश्वर-स्तुति-प्रार्थना :

3. **विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।**
यद्भद्रं तन्नऽ आ सुव।। –यजुर्वेद 30.3

सम्पूर्ण सृष्टि के उत्पत्तिकर्त्ता एवं समग्र ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर! आप कृपा करके हमारे समस्त दुर्गुणों, दुर्व्यसनों और दुःखों को दूर कर कल्याणकारी गुण, कर्म व पदार्थ प्रदान कीजिए।

कल्याणकारी मार्ग पर चलने की कामना :

4. **अग्ने नय सुपथा रायेऽ अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्य स्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमऽउक्तिं विधेम।।** –यजुर्वेद 40.16

स्वप्रकाश, दिव्य तेजधारी प्रभो! आप हमें भक्ति और धर्मयुक्त श्रेष्ठ कल्याणकारी मार्ग पर ले चलो। हे दयानिधान! आप हमारे

सभी कर्मों के ज्ञाता हो, हमारे सभी दुष्कर्मों को दूर कीजिए। हम आपकी विविध प्रकार से स्तुति-प्रार्थना-उपासना व भक्ति करते हैं।

ज्ञान रूपी अमरत्व प्राप्त करने की प्रार्थना :

5. असतो मा सद्‌गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्माऽमृतं गमय॥

—बृहदारण्यक उपनिषद् 1.3.28

महान् प्रभो! हमें असत्य से सत्य की ओर प्रेरित करो। अज्ञान का अन्धकार हटा हमें ज्ञान और सद्‌बुद्धि प्रदान करो। अज्ञान के मृत्युरूपी बन्धन से छुड़ा हमें अमरतारूपी सत्य ज्ञान देने की कृपा कीजिए।

पूर्ण प्रभु से पूर्णता की कामना :

6. पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

—शतपथ ब्राह्मण 4.8.1

महान् उत्पत्तिकर्त्ता, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ परमेश्वर! आप सम्पूर्ण हैं, आपकी सम्पूर्ण सृष्टि-रचना पूर्ण है। यदि इस विशुद्ध सम्पूर्णता में से पूर्णता को घटा दिया जाए, तो भी विशुद्ध पूर्णता ही विद्यमान रहती है। महान् उत्पत्तकर्त्ता! आप उसी विशुद्ध पूर्णता से परिपूर्ण हैं। हम निष्ठापूर्वक श्रद्धाभाव से प्रार्थना करते हैं कि हमारा जीवन भी इसी पूर्णता से परिपूर्ण हो।

पारस्परिक बन्धुत्व की प्रार्थना :

1. ओ३म् सह नाववतु सह नौ भुनक्तु।
सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै॥

—तैत्तिरीयोपनिषद् 2.1

सर्वव्यापी भगवन्! हमें संरक्षण देकर दिव्य आनन्द दीजिए। हम अपनी एकता और घनिष्ठता से, सामूहिक रूप से, शक्तिशाली बनें। आपकी प्रेरणा से हमारा परस्पर संवाद, पारस्परिक सोच-समझ गरिमा से परिपूर्ण हो और हमारे मध्य कभी भी पारस्परिक विद्वेष और कटुभाव न पनपे।

दिव्य संरक्षण की अनुभूति की कामना :

2. **गणानां त्वा गणपतिं हवामहे**
प्रियाणां त्वा प्रियपतिं हवामहे।
निधीनां त्वां निधिपतिं हवामहे वसो मम।
आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्।।

– यजुर्वेद 23.19

हम उस प्रभु का आह्वान करते हैं जो असंख्य तत्त्वों, वस्तुओं, जातियों, प्रजातियों, और गणों का संरक्षक है। हम अपने हृदय के समीप अपनी प्रिय वस्तु के रूप में उस परमात्मा की अनुभूति करते हैं। सभी प्राणियों के अनुपम अग्रणी, सब प्रकार के ज्ञान के स्रोत परमेश्वर! आप सभी जीवों की उसी भाँति रक्षा करते हैं जिस प्रकार एक माँ अपने बच्चे को अपने गर्भ में सुरक्षित रखती है। सकल जगत् के महान् पोषक, गणों के पति संरक्षक प्रभो! आप प्रकृति और उसके सूक्ष्मतम परमाणुओं की भी रक्षा करते हैं। हम भक्तिभाव से सर्वशक्तिमान्, सर्वरक्षक, अद्वितीय गणपति के दिव्य संरक्षण की अनुभूति की कामना करते हैं।*

---

* वेदों पर व्याख्या करते हुए महीधर ने 'वेदद्वीप' नामक पुस्तक में उपरोक्त मंत्र का अश्लील अर्थ कर वेद, धर्म, और नारी का जीवित रहना ही कठिन कर दिया। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने प्रमाणों और संदर्भों सहित उपर्युक्त शुद्ध अर्थ 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में कर 'वेद, धर्म, और नारी' के यथोचित मान और प्रतिष्ठा को पुनः हिन्दू समाज में प्रतिपादित किया (देखिए 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' पुस्तक का अध्याय 6)।

सर्वज्ञ सम्पूर्ण देव की आराधना :

3. त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देव देव॥

—पाण्डवगीता 28

सर्वेश सकल उत्पत्तिकर्ता प्रभु! आप ही माता और पिता हो, आप ही मेरे बंधु और सखा हो, आप ही विद्या और धन-सम्पत्ति हो। हे परमेश्वर! आप ही मेरे सर्वज्ञ सम्पूर्ण देवों के देव हो।

सत्य, प्रेम और सद्भावना की याचना :

4. अनुव्रतः पितुः पुत्रो माता भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्॥

—अथर्ववेद 3.30.2

विश्व-विधाता कृपालु भगवन्! आप अपनी कृपा से हमारे मन में परस्पर प्रेम और स्नेह का संचार करो, ताकि संतान भी इस प्रकार अपने माता-पिता की आज्ञाकारी रहें, और परिवार के सभी सदस्यों के मध्य समरसता और सौहार्द का समावेश बना रहे। आपकी दया से परिवार-जनों और पति-पत्नी का परस्पर संवाद सत्य, प्रेम और सद्भाव से परिपूर्ण हो।

परस्पर आनन्दपूर्वक जीवन की चाह :

5. मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥

—अथर्ववेद 3.30.3

परम दयालु परमेश्वर! हम भाइयों और बहनों के आपसी व्यवहार को उद्देश्यपूर्ण और सफल बनाने के लिए हमारे अंदर परस्पर स्नेह और श्रेष्ठ संवाद का संचार कीजिए। हम सत्याचरण कर, पुरुषार्थ से अपनी आजीविका अर्जित करें और आपस में सब मिल-जुल और बाँट कर, आनन्दपूर्वक उपभोग करें।

दृढ़ और संगठित रहने की अनुकम्पा :

6. समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः
 समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
 सम्यञ्वोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः।।

—अथर्ववेद 3.30.6

पूज्य कृपालु भगवन्! हमारे सामूहिक प्रयासों को सफल बनाइए। आपकी कृपादृष्टि से हम सभी संसाधनों को जुटाकर अपने सहभोज–कक्ष का प्रयोग पारस्परिक सम्बन्धों को और अधिक प्रगाढ़ बनाने हेतु करें। हमें एकता का वर दो जिससे कि हम पहिये की सलाखों की भाँति दृढ़ और संगठित रहें।

संक्षिप्त सार

परम दयालु परमेश्वर! परिवार के सभी सदस्य अपनी श्रद्धा अर्पित करने हेतु एकत्रित हुए हैं। पारस्परिक प्रेम और स्नेह को प्रगाढ़ करने के लिए हमें सद्बुद्धि और समरसता दो ताकि हमारे हृदय विद्वेष से रहित हों और सभी परिवार–जन सौहार्दप्रियता से परिपूर्ण हों। सभी परिवार–जनों और अन्य बंधु–बांधवों का आपसी संवाद एवं व्यवहार सत्यप्रियता, प्रेम और करुणा से ओत–प्रोत हो। सब परिवार–जन विनम्र, सम्माननीय और कर्त्तव्यनिष्ठ हों।

स्वास्थ्य-प्राप्ति की प्रार्थनाएँ

बल और ओज की याचना :

1. तनूपाऽअग्नेऽसि तन्वं मे पाहि–
 आयुर्दाऽअग्नेऽस्यायुर्मे देहि
 वर्चोदाऽअग्नेऽसि वर्चो मे देहि।
 अग्ने यन्मे तन्वाऽऊनं तन्मऽआपृण।।

—यजुर्वेद 3.17

अजर–अमर–सर्वाधार भगवन्! मेरे शरीर को दृढ़ता प्रदान करो। मुझे सक्षम, स्वस्थ, शारीरिक बल और दीर्घायु दो। आपकी कृपा–दृष्टि

से मैं स्वस्थ, प्रसन्नचित्त और बलवान् बनूँ। महान् प्रकाशस्वरूप सुचेतन परमेश्वर! हमारे सभी दुःखों और रोगों का निवारण करो ताकि हमें बल और ओज की प्राप्ति हो।

शारीरिक, मानसिक और आत्मिक स्वस्थ शतायु जीवन :

2. तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।।

—यजुर्वेद 36.24

परम हितकारी परमेश्वर! मैं आपके दिव्य गुणों का ध्यान कर आपकी उपासना करता हूँ। अपनी कृपादृष्टि से मुझे पूर्ण आरोग्यता अर्थात् शारीरिक, मानसिक और आत्मिक स्वास्थ्य प्रदान कीजिए। मेरे नेत्र, कर्ण, रसना और अन्य शारीरिक अंग सौ वर्ष तक समर्थ रहें। आपकी दया से मैं सौ वर्ष पर्यन्त संकल्पपूर्ण जीवन जीने के लिए शारीरिक और मानसिक रूप से सशक्त रहूँ। मुझे सौ वर्ष पर्यन्त आनन्दपूर्ण, स्वतन्त्र, समृद्ध और स्वस्थ जीवन प्रदान कीजिए।

ब्रह्माण्ड में शांति की कामना :

3. आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः।
शान्ततमास्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम्।।

—पारस्कर गृह्य सूत्र 1.8.5

सर्वप्रकाशक सर्वेश्वर! आपका तेज सम्पूर्ण द्रव्य-जगत् में शांति फैलानेवाला है। दयानिधान! सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में सर्वोच्च शांति की स्थापना के लिए ब्रह्माण्ड को और अधिक शांतिमय बनाइए। आपके अनुपम आशीर्वाद से जल और द्रव्य सर्वोच्च शांति प्रदान करने के लिए औषधि का कार्य करें। भगवन्! मुझे भी वही शांति प्रदान कीजिए।

मृत्युंजय मन्त्र :

4. त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।।

—यजुर्वेद 3.60

तीन लोक अर्थात् भूलोक, द्युलोक और अन्तरिक्ष को धारण और पोषण करनेवाले तेज और शक्ति के प्रदाता, सर्वरोगनाशक और सब के सहायक सर्वेश्वर! जिस प्रकार से पका फल सुगंध कारक व पुष्टिवर्द्धक बनकर स्वत: ही लता के बन्धन से छूट जाता है, उसी प्रकार हम भी जीवन में सुगंध व पौष्टिकता फैलाते हुए सभी प्रकार के दु:खों और बन्धनों (जन्म-मरण आदि) से छूटकर मुक्ति को प्राप्त करें। हम इस दिशा में पुरुषार्थ करें ताकि हमें दीर्घायु और स्वस्थ जीवन प्राप्त हो।

आरती

ओ३म् जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे।
भक्त जनों के संकट, क्षण में दूर करे।।
ओ३म् जय जगदीश हरे............

जो ध्यावे फल पावे, दु:ख विनशे मन का।
सुख सम्पत्ति घर आवे, कष्ट मिटे तन का।।
ओ३म् जय जगदीश हरे............

मात-पिता तुम मेरे, शरण गहूँ मैं किसकी।
तुम बिन और न दूजा, आस करूँ किसकी।।
ओ३म् जय जगदीश हरे............

तुम पूरण परमात्मा, तुम अन्तर्यामी।
पार ब्रह्म परमेश्वर, तुम सबके स्वामी।।
ओ३म् जय जगदीश हरे............

तुम करुणा के सागर, तुम पालनकर्त्ता।
मैं सेवक तुम स्वामी, कृपा करो भर्त्ता।।
ओ३म् जय जगदीश हरे............

तुम हो एक अगोचर, सबके प्राणपति।
किस विधि मिलूँ दयामय, ऐसी दो सुमति॥
ओ३म् जय जगदीश हरे..............
दीनबन्धु दुःखहर्त्ता, तुम रक्षक मेरे।
करुणा हस्त बढ़ाओ, शरण पड़ा तेरे॥
ओ३म् जय जगदीश हरे..............
विषय विकार मिटाओ, पाप हरो देवा।
श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ, सन्तन की सेवा॥*
ओ३म् जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे।
भक्त जनों के संकट, क्षण में दूर करे॥

भोजन मंत्र

ओ३म् अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः।
प्र प्रं दातारं तारिष ऽ ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे॥

—यजुर्वेद 11.83

अन्न और आरोग्य प्रदान करनेवाले परमेश्वर! हमें यह पुष्टिकारक और बलदायक अन्न प्राप्त कराइये। अन्नदाताओं को उन्नति और समृद्धि दीजिए। सभी प्राणधारियों को स्वास्थ्यवर्द्धक और पौष्टिक आहार की प्राप्ति कराइये।

शान्ति पाठ

ओ३म् द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

—यजुर्वेद 36.17

---

* आरम्भ में जब स्वामी शिवानन्द ने आरती लिखी तो उन्होंने आरती को यहीं समाप्त कर दिया था।

सर्वशक्तिमान्, दयालु, शांतिप्रदाता प्रभो! इस द्युलोक में सर्वत्र शांतिमय वातावरण व्याप्त हो। आपकी कृपा से यह ब्रह्माण्ड हमारे लिए सुख-शांतिकारी होवे। इस पृथिवी को शान्ति एवं सुखमय वातावरण से सुशोभित कीजिए ताकि जल मधुमय हो, जड़ी-बूटियाँ व औषधियाँ सुखदायक हों तथा वनस्पतियाँ आनन्दकारी हों। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में सुख, शान्ति, सौहार्द और समरसता का समावेश हो। भूलोक, द्युलोक और अन्तरिक्ष तीनों लोकों में सर्वत्र शान्ति ही शान्ति छाई हो। हे स्वप्रकाशस्वरूप परमेश्वर! मेरे जीवन को भी इसी तरह सुखदायी और शांतिमय कीजिए।

ओ३म् शान्तिः   द्युलोक में शान्ति हो!
ओ३म् शान्तिः   भूलोक में शान्ति हो!
ओ३म् शान्तिः   आध्यात्मिक शान्ति हो!

3

मानव-संस्कृति की आधारमूल संहिता

मनुस्मृति

राजर्षि मनु का 'मानव धर्मशास्त्र'

विश्व का सर्वप्रथम लिखित कानूनों का संविधान

राजर्षि मनु अपने समय के महत्तम वैदिक विद्वान् थे। मनु ने शाश्वत प्राकृतिक नियमों को एक पुस्तक के रूप में क्रमबद्ध किया, जिसे 'मनुस्मृति' के नाम से जाना जाता है। स्मृति का अर्थ है वेद के आधार पर बनाया गया ग्रन्थ, जिसे कण्ठस्थ किया जाए। एफ॰ मैक्समूलर (1886) ने इसको 'पवित्र नियमों का संस्थान' कहा है। मनु ही ऐसे प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने लिखित कानूनों का संविधान विश्व को प्रदान किया।

मनु का दूसरा नाम स्वायम्भुव मनु है। मनु ने घोषणा की कि 'वेद' धर्म का प्रामाणिक एवं प्रमुख आधार है (मनु 2.6, 2.13) 'मनुस्मृति' को कानून की सबसे अधिक प्रामाणिक पुस्तक माना जाता है। इस पुस्तक को 'मानव धर्मशास्त्र' के नाम से भी जाना जाता है अथवा 'मानवता की आचार-संहिता' के नाम से भी जाना जाता है। इस कृति को विभिन्न धार्मिक ग्रन्थों, जैसे-ब्राह्मण-ग्रंथ, ताण्ड्यब्राह्मण (23.16.7), तैत्तिरीय उपनिषद् (2.2.10.2, 3.1.9.4); निरुक्त (3.4) ने मान्य स्थान दिया है। 'मनुस्मृति' की प्रशंसा मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम तथा अन्य महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों ने भी की है। जब बाली ने सुग्रीव के राज्य को हड़पकर सुग्रीव की पत्नी को बलपूर्वक अपनी रखैल बनाकर रखा, तब श्रीराम ने

सुग्रीव की सहायता हेतु बाली का वध किया। घायल बाली ने, उस समय श्री राम से पूछा–'मुझे किस अपराध की सजा दी गई है?' राम ने उत्तर दिया–

राजभिः कृतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः।
निर्मला स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा।

–मनुस्मृतिः 8–318

अर्थात् जो मनुष्य पापकर्म करने पर राजा द्वारा दण्डित किए जाते हैं, व पाप से मुक्त होकर पुण्यात्मा पुरुषों की भाँति सुखी (स्वर्गवासी) होते हैं।

शासनाद्वा विमोक्षाद्वा स्तेनः स्तेयाद्विमुच्यते।
अशासित्वा तु तं राजा स्तेनस्याप्नोति किल्विषम्॥

अर्थात् जो चोर अथवा प्राणी स्वयं राजा के पास जाकर अपने पाप को स्वीकार कर लेता है और दण्ड चाहता है, राजा चाहे उसे दण्ड दे अथवा क्षमा कर दे–दोनों अवस्थाओं में वह पापी पाप से मुक्त हो जाता है। परन्तु पापी को पाप का दण्ड न देने से राजा स्वयं उस पाप का भागी हो जाता है।

श्रीराम ने बाली को 'मनुस्मृति' के उदाहरण प्रस्तुत किए।

(वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धा 18.30.32)।

आचार्य बृहस्पति, भृगु, नारद (एफ. मैक्सम्यूलर, 1886 द्वारा उद्धृत); गौतम, वसिष्ठ, आश्वलायन, जैमिनि, बौधायन, और अन्य सूत्र–ग्रन्थ सभी 'मनुस्मृति' को उद्धृत करते हैं (प्रो॰ सुरेन्द्र कुमार, 1990)। बौद्ध कवि अश्वघोष ने 'मनुस्मृति' के महत्त्व को स्वीकार किया है। अश्वघोष प्रथम शताब्दी के शासक कनिष्क के समकालीन थे। उनकी पुस्तक वज्रकोपनिषद् में 'मनुस्मृति' के प्रामाणिक संदर्भ अधिकधिक मिलते हैं। सम्राट् कनिष्क सम्राट् विक्रमादित्य के सीधे उत्तराधिकारी थे। उन्होंने मध्य एशिया पर भी शासन किया था। कौटिल्य, आदिशंकराचार्य, तथा आधुनिक काल के महर्षि दयानन्द सरस्वती, श्री अरविन्द (प्रो॰ सुरेन्द्र कुमार, 1990) और

स्वतंत्र भारत के राष्ट्रपति डॉ॰ राधाकृष्णन् ने भी 'मनुस्मृति' की महत्ता स्वीकार की है।

फ्रांस की मैडम लुइस जेकोलियट ने ई॰स॰ 1876 में, **'ला बाइबल डेन्स एल इण्डे'** नामक पुस्तक लिखी, उसमें ईसाइयों और हिब्रू (यहूदी) रेवेलेशन अथवा आध्यात्मिक ज्ञान के स्रोत– 'मनुस्मृति' को सिद्ध कर दर्शाया है। इस पुस्तक में मनु का वर्णन 'मिश्रवासियों के मेनेज; यहूदियों के मोजेज; ग्रीक और रोम के मीनाज; और योरुप के सुकरात, प्लेटो और अरस्तु' के भी पूर्वगामी महान् पूर्वज' के रूप में दिखाया है। इन सब की अग्रगामी परम्परा हिन्दी ही रही है, जो मध्य एशिया की उपनिवेशवादी जनसंख्या के यूनान में अवतरण के साथ आई और वहाँ के लेखकों ने भी अपना लिया। ज्यूरिस्ट मैडम लुइस जेकोलियट ने लिखा–

'6,000 वर्ष पूर्व सुसंस्कृत, सुसभ्य और सघन जनसंख्या वाले भारत ने मिश्र, पर्शिया, फिलिस्तीन, इज्रायल, अरेबिया, यूनान और रोम पर अपनी अमिट छाप छोड़ी, इतनी अमिट जितनी कि इन सभी राष्ट्रों ने अन्य राष्ट्रों पर छोड़ी। ईसा-काल से तीन हजार वर्ष पूर्व महर्षि मनु ने हिन्दू कानूनों का विधान रच दिया था, और यही हिन्दू कानून सम्पूर्ण प्राचीन समुदाय द्वारा अपनाए गए। उदाहरण के रूप में : रोम में इन्हीं कानूनों का लिखित संविधान 'जस्टीनियन की संहिता' बना, जिसे सम्पूर्ण विश्व के आधुनिक संविधानों द्वारा मूलभूत संहिता के रूप में अपनाया गया।

अत: महर्षि मनु को ऐसा प्रथम महानुभाव माना गया है, जिनकी प्राकृतिक कानूनों की संहिता, पूर्व और पश्चिम की दोनों सभ्यताओं का आधार बन गई। महर्षि मनु के सम्मान में फिलिपीन्स संविधान-सभा ने अपने सभागार में उनकी प्रतिमा स्थापित की।

4

सम्राट् विक्रमादित्य व भर्तृहरि ज्ञानी बनाम अज्ञानी

पाश्चात्य इतिहासकारों और भारत में यूनानी राजदूत मैगस्थनीज के अनुसार सम्राट् विक्रमादित्य ने बृहत् भारत पर 400 ई॰पू॰ में शासन किया। कुछ इतिहासकार इस तथ्य की प्रामाणिकता पर भी शंका करते हैं। उनका मानना है कि विक्रमादित्य का शासन–काल मैगस्थनीज की पुस्तक 'इण्डिका' में बताए काल से बहुत पहले रहा था। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि विक्रमादित्य के नाम से दो सम्राट् हुए हैं, जिन्होंने अलग–अलग समय पर शासन किया। इस पुस्तक में उस विक्रमादित्य का वर्णन किया गया है, जिसके राज्य की सीमाएँ पूर्व में गंधार (आधुनिक अफगानिस्तान) तथा आधुनिक पर्शिया और अरब देश के पूर्वी भागों के पूर्व में फैलीं, उत्तर में मध्य एशिया के उत्तर तक फैली हुई थीं, जैसा कि पुरातत्त्व-खोजों का शिलालेख 4, 13 (श्री राम साठे : 1987) से पता चला है।

सम्राट् विक्रमादित्य के बड़े भाई राजा भर्तृहरि ने ईसा के 80 वर्ष पूर्व मध्य एशिया पर शासन किया था। उनकी बहन मीनावती एक उच्चकोटि की विदुषी थी। भारत के पूर्वी भागों पर अर्थात् आधुनिक बांग्लादेश, कामरूप अर्थात् प्राचीन असम तथा म्याँमार

पर मीनावती का शासन था। मीनावती के शासन की राजधानी ढाका थी। उनका भतीजा राजा गोपीचन्द गुरु जलंधरनाथ का शिष्य था। बाद में गोपीचन्द अपने राज्य को त्यागकर अपने चाचा भर्तृहरि की संगत में चले गए। राजा भर्तृहरि ने अपना राज्य अपनी अत्यधिक प्रिय पत्नी के विश्वासघात से खिन्न हो पहले ही त्याग दिया था। भर्तृहरि–कथा अनुसार उनकी सुन्दर पत्नी 'पिंगला' घुड़सवार–सेना के सेनापति को अनैतिक छद्म रूप से प्यार करती थी। राजा भर्तृहरि पर यह सम्बन्ध तब उजागर हुआ जब उन्होंने एक नागरिक द्वारा उन्हें भेंट किए गए अमर–फल को अपनी पत्नी को प्रेम से दिया। परन्तु रानी पिंगला ने उस फल को छिपा कर अपने प्रेमी घुड़सवार–सेना के सेनापति को दे दिया। घुड़सवार–सेना के सेनापति ने सोचा कि यह अमर–फल उन्हें प्रधान सेनापति को देना चाहिए और इस प्रकार घुड़सवार–सेनापति ने वह अमर फल प्रधान सेनापति को दे दिया। स्वामीभक्त प्रधान सेनापति ने वही अमर–फल प्रेम से राजा को भेंट कर दिया। जब राजा भर्तृहरि को ज्ञात हुआ कि यही अमर–फल तो मैंने अपनी पत्नी को भेंट दिया था, तब राजा भर्तृहरि अपनी पत्नी द्वारा किए गए इस विश्वासघात से बहुत दुःखी होकर, वैराग्य लेकर गुरु गोरखनाथ के शिष्य बन गए। गुरु गोरखनाथ के गुरु का नाम मच्छेन्द्रनाथ था जिनका नाद 'अलख–निरंजन' था। 'अलख–निरंजन' का अर्थ है कि 'ईश्वर एक अवर्णनीय ज्योतिःपुञ्ज है।'

राजा विक्रमादित्य को अपने राज्य के साथ–साथ भर्तृहरि और गोपीचन्द के राज्यों की भी देख–रेख करनी पड़ी। इस प्रकार विक्रमादित्य बृहद् भारत के सबसे अधिक शक्तिशाली शासक बन गए। उनके राज्य की सीमाएँ पश्चिम में अरब देश तथा आधुनिक मध्य–पूर्वी और मध्य एशिया तक फैली हुई थीं। (देखिए संलग्न मानचित्र)। 57 ई॰पू॰ विक्रमादित्य की मध्य एशिया में हुई विजय के उपलक्ष्य में विक्रम सम्वत् का प्रादुर्भाव हुआ।

मक्का में स्थित काबा के एक शिलालेख में सम्राट् विक्रमादित्य का नाम अंकित

श्री भूदेव शर्मा[3] द्वारा अंग्रेजी ई-मेल का हिन्दी अनुवाद:[4]

तुर्की के नगर इस्तम्बूल की "मकतब-ए-सुल्तानिया" पुस्तकालय में सुरक्षित पुस्तक "सयार-उल-ओकुल" (जिसका अर्थ है-स्मरण रखने योग्य शब्द) के पृष्ठ 315 पर लिखा है कि मक्का में स्थित काबा में अरबी भाषा में लिखा एक शिलालेख लगा था। इस शिलालेख, जिसमें सम्राट् विक्रमादित्य (बिक्रमतुल)[5] एवं अरब क्षेत्रों पर उनके साम्राज्य का उल्लेख है, का हिन्दी-रूपान्तर इस प्रकार है-

"वे लोग भाग्यशाली हैं जिनका जन्म विक्रमादित्य के शासन में हुआ। वह एक महान्, उदार, कर्तव्यपरायण एवं अपनी प्रजा के कल्याण के प्रति निष्ठावान् शासक था। परन्तु उस समय हम अरब निवासी ईश्वर से विमुख भोग-विलास में खोए थे। षड्यंत्रों एवं अत्याचार का बाहुल्य था। अज्ञान के अंधकार से देश ढका

----

3. डॉ॰ भूदेव शर्मा, प्रोफेसर, क्लार्क अटलाण्टा यूनिवर्सिटी, अटलाण्टा, पूर्व कुलपति, हिन्दू यूनिवर्सिटी ऑफ अमेरिका, ऑरलैण्डो, फ्लोरिडा, अध्यक्ष, वर्ल्ड एसोसिएशन फॉर वैदिक स्टडीज, यू.एस.ए. निवास-2505 ब्रैडफोर्ड स्क्वायर, अटलाण्टा, ज्योर्जिया-30345, यू॰एस॰ए॰ Phones: 404-248-9494(Home), 404-880-6912(O); Fax 404-880-6909.

4. Web site http://www.salagram.net/VWH-Kaaba.html provided for Vikramaditya and Arabia by Fanabba@aol.com

5. नोट-एक देश के स्थानों तथा व्यक्तियों के नाम दूसरे देश में कई कारणों से बदल जाते हैं। सिंधु नदी मध्य-पूर्व में हिन्दू बन गई और योरुप में इंडस। चन्द्रगुप्त का नाम ग्रीस में सौन्द्राकौटस हो गया। भारत में भी ऐसा हुआ है, जब सौक्रटीज का नाम सुकरात तथा प्लेटो का नाम अफलातून हो गया।

था। समूचे देश में अमावस्या का-सा अंधकार था। परन्तु अब परोपकारी सम्राट् विक्रमादित्य के कारण उनकी देख-रेख में शिक्षा का नया एवं सुखद प्रकाश छा गया है। उन्होंने अपने पवित्र धर्म का प्रचार किया है। अपने देश से हमारे देश में ऐसे प्रतिभावान् विद्वान् भेजे हैं, जिनका ज्ञान सूर्य के प्रकाश की भाँति है। इन विद्वानों एवं नीतिज्ञों की कृपा से हम लोगों ने एक बार फिर ईश्वर की सत्ता को पहचाना है। उसकी सत्ता को स्वीकार करके सत्य मार्ग पर अग्रसर हुए हैं। सम्राट् विक्रमादित्य के आग्रह पर ये विद्वान् हमें शिक्षा एवं उपदेश देते हैं।"

सय्यार-उल-ओकुल पुरातन पश्चिमी एशिया साहित्य का बृहत्तर संकलन होने के लिए प्रसिद्ध है। यह तीन भागों में विभाजित है। पहले भाग में इस्लाम-पूर्व के कवियों की रचनाएँ और उनके जीवन-वृत्त हैं। दूसरे भाग में हजरत मुहम्मद के समय के ठीक बाद से लेकर बनी-उम-मय्या राजवंश के विभव-काल की कविताओं एवं विवरण का संकलन है। तीसरे भाग में उसके बाद तथा खलीफा हारून-अल-रशीद के समय तक के कवियों की सामग्री है।

यह संकलन हारून-अल-रशीद के राजदरबार-कवि अबु आमीर असमयी द्वारा सम्पादित है। इसका प्रथम संस्करण 1864 में बर्लिन से तथा उसके पश्चात् 1932 में बैरूत से प्रकाशित हुआ था।

यह प्राचीन अरब प्रदेश के सामाजिक जीवन, रीति-रिवाज, और मनोरंजन के साधनों पर काफी प्रकाश डालता है। पुस्तक में मक्का नगर तथा वहाँ के काबा के मन्दिर में ओकज नामक वार्षिक उत्सव का विशद वर्णन है। इस बात से पाठकों को यह पुष्टि हो जाएगी कि काबा में वार्षिक हज इस्लाम-पूर्व से चला आ रहा सामाजिक सम्मेलन का रूप है। ओकज का रूप कार्निवाल जैसा नहीं था। यह विद्वानों और समाज के श्रेठ लोगों के तब अरेबिया
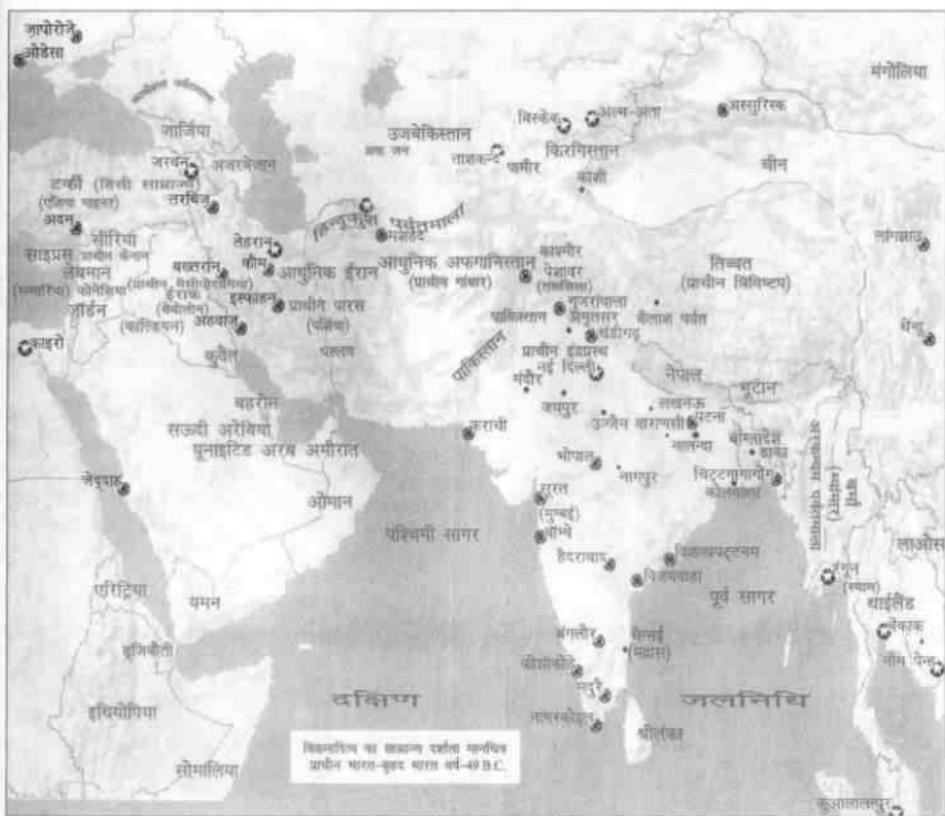
में व्याप्त वैदिक संस्कृति के अन्तर्गत सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, साहित्यिक विषयों पर वार्तालाप करने का मंच था। सय्यार-उल-ओकुल इस पर बल देता है कि उस सम्मेलन से जो निष्कर्ष निकलते थे, उनका अरेबिया में व्यापक आदर होता था।

सीरिया के एक जानकार एवं अरबी भाषा के कवि डॉ॰ हवासली, जो आजकल अटलाण्टा में हैं, ने कहा कि इस्लाम के प्रारम्भ (१४०० ईसवी) में ही काबा को साफ कर दिया गया था। उसके बाद से इसमें किसी प्रकार का कोई पुरातन लेख अथवा वस्तु नहीं है। उन्होंने यह भी कहा कि दीवार पर एक भित्ति-चित्र बचा था, वह भी मिटा दिया गया है।

सम्राट् विक्रमादित्य के प्रधानमंत्री चाणक्य, जिसे कौटिल्य के नाम से भी जाना जाता है, बहुत उच्चकोटि के विद्वान् थे। चाणक्य ने विभिन्न विषयों पर कई पुस्तकें लिखी। इनके द्वारा रचित अर्थ-शास्त्र और नीति-शास्त्र का आज भी अनेक विश्वविद्यालयों में पाठ्य-पुस्तकों के रूप में उपयोग होता है। विक्रमादित्य के बड़े भाई भर्तृहरि भी एक बहुत बड़े विद्वान् थे, उन्होंने भी कई पुस्तकों की रचना की। भर्तृहरि द्वारा 'नीति' पर रचित पुस्तक का एक उदाहरण पुस्तक के आरम्भ में प्रस्तुत है।

विक्रमादित्य-राज्य भौगोलिक मान चित्र

5

महान् नीतिज्ञ विदुर एवं 'ज्ञानी' की परिभाषा

महाभारत उस 'महायुद्ध' का नाम है, जो भारत के दो राजवंशों 'कौरवों' और 'पाण्डवों' के मध्य 3138 ई॰पू॰ में हस्तिनापुर अर्थात् आधुनिक दिल्ली के पास लड़ा गया था। इस युद्ध में भारतीय उपमहाद्वीप और मध्य-एशिया सहित पड़ोसी देशों के राजाओं और सेनाओं ने भाग लिया। इसीलिए इस युद्ध को 'महाभारत युद्ध' अथवा बृहत् भारत का महायुद्ध अर्थात् 'महाभारत' कहा जाता है। महान् नीतिज्ञ विदुर ने 'पाण्डवों' को अपने हिस्से में आए राज्य के अधिकार हेतु और महाभारत के युद्ध को टालने के लिए जो वार्तालाप धृतराष्ट्र के साथ नीति और तर्क सहित किए, उनको 'विदुर नीति' कहते हैं।

निश्चित्य यः प्रक्रमते नान्तर्वसति कर्मणः।
अवन्ध्यकालो वश्यात्मा स वै पण्डित उच्यते॥

—विदुर-नीति 1.25

ऐसा व्यक्ति जो मननशील, समर्पित और लक्ष्यभेदी है और सृजनात्मक कार्यों में संलग्न रहता है, पण्डित कहलाने का अधिकारी है।

आर्यकर्माणि रज्यन्ते भूतिकर्माणि कुर्वते।
हितं च नाभ्यसूयन्ति पण्डिता भरतर्षभ॥

—विदुर-नीति 1.26

श्रेष्ठ पण्डित ऐसे विद्वान् लोग होते हैं जो मानवतावादी कार्यों

में गहरी रुचि लेते हैं। गुणी पण्डित जनसमुदाय की खुशहाली के लिए कार्य करने में प्रसन्नता अनुभव करते हैं। पण्डित ऐसे मानवतावादी लोगों से न तो ईर्ष्या रखते हैं और न ही उनकी आलोचना करते हैं।

न हृष्यत्यात्मसम्माने नावमानेन तप्यते।
गाङ्गो ह्रद इवाक्षोभ्यो यः स पण्डित उच्यते॥

—विदुर-नीति 1.27

पण्डित अर्थात् बुद्धिमान् लोग प्रशंसा की अपेक्षा नहीं रखते। ऐसे विद्वान् उपेक्षा और अपमान किए जाने पर आहत न होकर संतुष्ट ही रहते हैं।

6

हिन्दू संस्कृति के महत्त्वपूर्ण व्यावहारिक ग्रन्थ

1. षड्दर्शन

संसार के रचने से लेकर आध्यात्मिक ज्ञान को समझाने हेतु जो छ: शास्त्र मार्गदर्शन करते हैं, वे षड्दर्शन कहलाते हैं। क्रम से षड्दर्शन निम्न हैं :

1. **मीमांसा दर्शन (पूर्व मीमांसा) :** 'मीमांसा' शब्द का अर्थ 'तर्कपूर्ण विचार करना' है। पूर्व मीमांसा को प्राय: 'मीमांसा' तथा उत्तर मीमांसा को 'वेदांत दर्शन' के नाम से जाना जाता है।

जैमिनी द्वारा रचित मीमांसा दर्शन वैदिक वाक्यों का विश्लेषण करता है, जैसे वेदों में कौन-से वाक्य विधि-वाक्य हैं और कौन-से अर्थवाद-वाक्य? इसका विवेचन मीमांसा दर्शन से ही संभव है। इस दर्शन के बिना वैदिक वाक्यों का विचार असम्भव है। जैसे **'आत्मानमुपासी'**—यह वेद का विधि-वाक्य है, अर्थात् परमेश्वर की उपासना करनी चाहिए। परन्तु जब तक मानव को परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव का ज्ञान नहीं होता, तब तक वह दृढ़तापूर्वक ईश-उपासना में प्रवृत्त नहीं होगा। इसलिए आगे कहा गया— **'मोक्षकाम: पुरुष: परमात्मोपासनेन मोक्षं भावयेत्'** अर्थात् मोक्ष के इच्छुक पुरुष को परमेश्वर की उपासना करनी चाहिए। अत: मीमांसा-दर्शन में मुख्यत: वैदिक वाक्यों पर तर्कपूर्ण विचार किया गया है। मीमांसा-दर्शन के विषय में यह भ्रान्त धारणा है कि इसमें केवल वैदिक कर्मकाण्ड एवं यज्ञ में पशुबलि का विधान किया गया है, परन्तु यह अनर्थ-परक व्याख्या है।

2. वैशेषिक दर्शन : वैशेषिक दर्शन के प्रणेता कणाद मुनि विश्व के प्रथम पुरुष थे जिन्होंने 'अणु सिद्धांत' को जन्म दिया। वैशेषिक दर्शन में मुख्यत: जगत् के पदार्थों के धर्म का, गुणों का, तथा उनके संगठन स्वरूप का विवेचन है। इस दर्शन में–द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य तथा विशेष की विवेचनात्मक व्याख्या है।

यदि कणाद और कपिल मुनि नहीं होते, तो हम विज्ञान की वर्तमान स्थिति तक नहीं पहुँच पाते (डॉ॰ सत्यप्रकाश)।

3. न्याय दर्शन : न्याय दर्शन के प्रणेता गौतम मुनि हैं। इस दर्शन में मुख्यरूप से प्रमाणों के आधार पर सत्य का निश्चय किया गया है। समस्त दार्शनिक, धार्मिक, तथा व्यावहारिक नियमन न्याय दर्शन के सिद्धान्तों के द्वारा ही होता है। न्याय दर्शन में पदार्थ व उनके गुणों को जानने की प्रक्रिया का विस्तृत वर्णन है। प्रारम्भ से अन्त तक दर्शन का अधिक भाग 'प्रमाण' के स्वरूप और प्रयोग की प्रक्रियाओं को प्रस्तुत करता है। न्याय दर्शन का मुख्य विषय 'प्रमाण' ही है।

4. योग दर्शन–पतंजलि का अष्टांग योग : प्राचीन ऋषि-मुनियों ने भौतिक जगत् की छानबीन के साथ आध्यात्मिक जगत् के रहस्यों का भी उद्घाटन किया है। यदि यह कहा जाए कि उपनिषद् एवं वेदान्त आदि में परमतत्त्व ब्रह्म का गूढ़ विवेचन अथवा निष्कर्ष है तो योग उस परमतत्त्व की प्राप्ति का अपूर्व व व्यावहारिक मार्ग दिखाता है। योग इन सिद्धान्तों को दैनिक जीवन में उतारने का मार्ग दर्शाता है।

योग दर्शन में चार अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में मन की वृत्तियों को अभ्यास के द्वारा नियंत्रित करने का उपाय व समाधि के स्वरूप व समाधि की अवस्था के विषय में बताया है। द्वितीय अध्याय में समाधि-प्राप्ति के साधनों का विस्तृत वर्णन है। तृतीय अध्याय में साधनों के अनुष्ठान से प्राप्त विभिन्न प्रकार की सिद्धियों का विवरण है। चतुर्थ व अन्तिम अध्याय में चित्त के निर्दोष स्वरूप

के वर्णन के साथ कैवल्य (मोक्ष) के स्वरूप का विवेचन है।

उस परम आनन्दस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति किस प्रकार सम्भव है—इसकी व्यावहारिक प्रक्रिया पतंजलि ऋषि द्वारा योग दर्शन में बताई गई है।

5. **सांख्य दर्शन** : कपिल मुनि द्वारा रचित सांख्य दर्शन अद्वितीय है। संख्या शब्द से 'सांख्य' शब्द की व्युत्पत्ति मानी गई है। सांख्य दर्शन में मुख्य रूप से जड़ प्रकृति को जगत् का मूल उपादान कारण एवं ईश्वर को जगत् का अधिष्ठाता व नियन्ता माना गया है। इसमें 24 तत्त्वों का विवेचन है। प्रकृति (जड़ जगत्) और पुरुष, ईश्वर के विवेक का ज्ञान हो जाना सांख्य है। इसी को मोक्ष या अपवर्ग कहा गया है। सांख्य दर्शन में प्रकृति व पुरुष का समन्वय बताया गया है।

6. **वेदान्त दर्शन (उत्तर मीमांसा)** : बादरायण व्यास रचित 'ब्रह्मसूत्र' को वेदान्त दर्शन भी कहते हैं। वेदान्त में मुख्य रूप से ब्रह्म का विवेचन किया गया है। वेदान्त अथवा उत्तर मीमांसा में 'अन्य ग्रन्थों में विशेषत: उपनिषदों में वेदों के सिद्धान्तों को कैसे प्रस्तुत किया है' इस पर चिन्तन है।

उपनिषदों के कुछ सूत्रों में विरोधाभास प्रतीत होता है, जैसे—**'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** (छान्दो॰ 3.14.1) यह 'सब ब्रह्म ही है', **'नेह नानास्ति किंचन'** (बृहदा॰ 4.4.19) 'अनेक प्रकार के पदार्थ नहीं हैं', **'सर्वं हि एतद् ब्रह्म'** (माण्डूक्य उपनिषद् 2) 'ये सब पदार्थ ब्रह्म-रूप हैं'। इन वाक्यों में विरोधाभास-सा प्रतीत होता है। अनेक आचार्यों ने इस विरोधाभास को सुलझाने हेतु दार्शनिक प्रयास किए हैं। इन तीनों ग्रन्थों की व्याख्या आचार्य शंकर, रामानुज, निम्बार्क, माध्व, व वल्लभाचार्य आदि आचार्यों ने अपने अनुसार की है, इनको 'वेदान्त या नवीन वेदान्त' के नाम से माना जाता है। इन पाँचों आचार्यों के नाम से वेदान्त के अलग-अलग सम्प्रदाय भी बन गए। इनमें आचार्य शंकर प्रमुख

हैं, जिन्होंने ब्रह्म को ही सत्य, अस्तित्वमय व अनादि माना तथा जगत् को असत्य और मिथ्या, जबकि द्वैतवाद का तात्पर्य 'जड़ व चेतन' दो तत्त्वों की मान्यता से ही है।

उपनिषदों के उक्त वाक्यों की व्याख्या महर्षि दयानन्द सरस्वती ने 'त्रैतवाद'-परक की है, जिसमें ईश्वर, आत्मा (जीव), एवं प्रकृति (जगत्), इन तीनों तत्त्वों को अस्तित्वमय व अनादि स्वीकार किया गया है। ब्रह्मसूत्र की भी ऐसी ही मान्यता है।

षड्दर्शन द्वारा मोक्ष-प्राप्ति अर्थात् ईश्वर-साक्षात्कार :
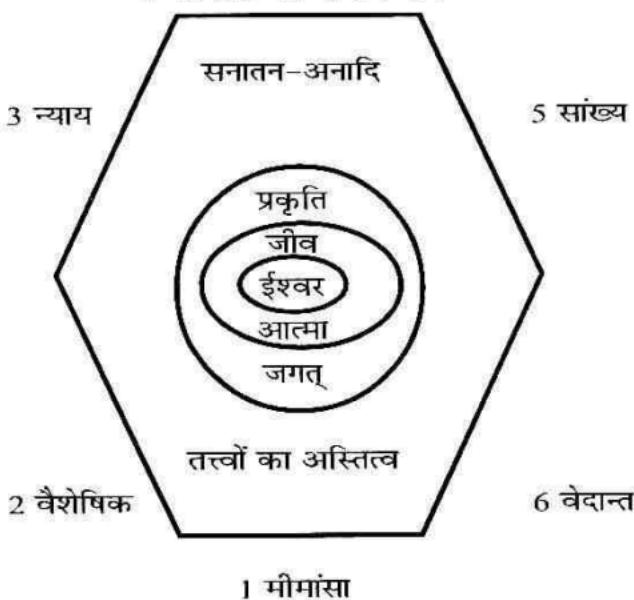
2. गीता

हिन्दू संस्कृति व दर्शन का श्रीकृष्ण द्वारा कथित महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ गीता है। गीता को श्रीमद्भगवद्गीता के नाम से भी जाना जाता है। महाभारत में 'सर्वशास्त्रमयी गीता' कहकर इसकी श्रेष्ठता को स्वीकारा गया है। आज की मानवता भी बाह्य तथा आंतरिक संघर्ष से जूझ रही है। अगर महाभारत ग्रन्थ बाह्य संघर्ष का द्योतक है, तो गीता आंतरिक अथवा मानसिक क्लेश पर विजय पाने का सुगम उपचार बताती है। आज के मानव को गीता के शब्द 'तस्मात् उत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चय' जैसे प्रेरणाप्रद आह्वान अपेक्षित हैं।

गीता का विषय 'निष्काम कर्म, ज्ञान, भक्ति, और योग' है। परन्तु गीता मुख्य रूप से हताश व कायरता को प्राप्त अर्जुन को अपने दायित्व, कर्तव्य, अथवा धर्म का अवबोध करानेवाला ग्रन्थ है।

निष्काम कर्म के महत्त्व के प्रतिपादन के कारण गीता को व्यावहारिक रूप से ज्ञान का स्रोत माना जाता है। गीता की प्रसिद्धि समन्वयवादी विचारधारा के कारण भी विशेष रूप से हुई है। इसीलिए महर्षि वेदव्यास ने गीता के विषय में कहा है **'गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः'** अर्थात् गीता का स्वाध्याय मनुष्य को सम्यक् प्रकार से करना चाहिए। कालांतर में मूल ग्रंथ में अनेक हेर-फेर होने के कारण वेदविरुद्ध वाक्यों की भरमार हो गई तथा परस्पर-विरोधी भावों का समावेश होने से भ्रान्त धारणाओं और विकृतियों ने गीता में घर अपना लिया। अतः गीता की प्रमाणिकता और संदेह होने से विद्वानों की दृष्टि में गीता भी एक विवाद का विषय बन गई है।

3. सत्यार्थप्रकाश तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

स्वामी दयानन्द सरस्वती (ई०स० 1824-1883) ने विश्व के सभी धर्मों, सम्प्रदायों, मतों, मज़हबों, रिलिजनों की पुस्तकों को पढ़, समझ, मन्थन कर 'सत्य क्या है, उसका प्रकाश' श्री देवेन्द्रनाथ

टैगोर (श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर के पिता) के कहने पर, तथा श्री बंकिम चन्द्र, श्री ईश्वर चन्द्र इत्यादि समाजसेवी महानुभावों के द्वारा साधारण व्यक्ति के लिए पुस्तक का महत्त्व सुझाने पर, **'सत्यार्थ प्रकाश'** का प्रथम प्रकाशन 1875 ई॰ में किया। ई॰ 1882 में 14 अध्यायों में दूसरा संशोधित संस्करण भी छपा। अब यह ग्रंथ देशी तथा विदेशी सभी भाषाओं में मिलता है।

दयानन्द बचपन में सच्चे शिव की खोज में घर से निकले थे। अतः जो लोग यथार्थ रूप से 'सच्चे शिव' अर्थात् सच्चे ईश्वर को प्राप्त करना चाहते हैं, उनके लिए यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। जो जिज्ञासु विश्व के सभी धर्मों, मतों, मज़हबों, रिलिजनों, जैसे हिन्दू, जैन, बौद्ध, चार्वाक, वाममार्गी, ईसाई, मुस्लिम आदि का तुलनात्मक अध्ययन करना चाहते हैं, उनके लिए यह एक अद्भुत शोधग्रंथ है। हर हिन्दू की आँखें खोलनेवाली, उसे जागृत करनेवाली एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। प्रत्येक मानव के लिए, चाहे कोई भी धर्म, मत अथवा मज़हब और रिलिजन का हो, उसे 'आदर्श मनुष्य' बनाने के लिए स्वामी दयानन्द सरस्वती की संसार को एक अति उत्तम देन है।

'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' चारों वेदों के भाष्य की भूमिका के रूप में लिखा गया ग्रन्थ है। महीधर, उव्वट, सायण आदि विद्वानों ने वेदों की व्याख्या तंत्र, पुराण व वाममार्ग से प्रभावित होकर की थी। इस अनर्गल व मिथ्या व्याख्या की प्रतिक्रिया-स्वरूप ही भारत में नास्तिक दर्शन–चार्वाक और बौद्ध व जैन जैसे अवैदिक मतों का प्रादुर्भाव हुआ। महीधर, सायण आदि के दूषित भाष्य के कारण ही इस समाज में गोमेध, अश्वमेध, नरमेध जैसे शब्दों का वास्तविक अर्थ लुप्त हो गया एवं चार्वाक व वाममार्ग से प्रभावित होकर समाज में विकृतियाँ उत्पन्न हो गईं। यूरोप के कीथ (Keith) तथा अन्य विद्वान् भी महीधर, सायण आदि की वेदों की व्याख्या के कारण, वेदों का सही अर्थ नहीं समझ पाए।

'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेदों के विषय में प्रमाण देते हुए निम्नलिखित सिद्धांत प्रतुत किए हैं :

1. वेद अपौरुषेय अर्थात् ईश्वर द्वारा प्रकट किए गए हैं, मनुष्य द्वारा रचित नहीं हैं, ऋग्वेद का निम्न मंत्र इसका प्रमाण है—

   तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
   छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्माद् अजायत॥

   —ऋग्वेद 10.90.9

   उस परमात्मा से ही ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद प्रकट हुए।
2. वेद सभी ज्ञान-विज्ञान आदि विद्याओं के मूल, पूर्ण ग्रन्थ हैं।
3. वेद में प्रयुक्त वैदिक संस्कृत-शब्दों को व्युत्पत्तिपरक (derived from roots) बताया, सामान्य संस्कृत-शब्दों की तरह रूढ़ि शब्द नहीं हैं, जैसे 'अहि' शब्द का सामान्य संस्कृत में अर्थ 'सर्प' होता है, परन्तु वैदिक संस्कृत में इसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ 'मेघ' है।
4. वेद-मंत्रों के तीन प्रकार के अर्थ हैं : आध्यात्मिक, आधिदैविक, और आधिभौतिक (आधियाज्ञिक)।
5. संहिता-ग्रन्थों में किसी प्रकार के ऐतिहासिक पात्रों या घटनाओं का वर्णन नहीं है। जो शब्द अथवा नाम ऐतिहासिक प्रतीत होते हैं, वे केवल प्रतीकात्मक हैं, उदाहरण के तौर पर 'वृत्र' शब्द का अर्थ ऐतिहासिक रूप से असुर होता है, पर वैदिक अर्थ 'मेघ' है।
6. मंत्र और सूक्त का जो कथित देवता है, उसका तात्पर्य मंत्र और सूक्त के विषय-मात्र से है। वेदों के व्युत्पत्तिपरक भाष्य करने से अग्नि, वरुण, इन्द्र आदि शब्द परमात्मा के गुणों/अर्थ को प्रकट करते हैं, इससे 'अनेक ईश्वरवाद'

(Polytheism) जैसी भ्रान्त धारणाएँ समाप्त हो गईं।

7. सायण, महीधर तथा कीथ आदि की भ्रांतियों और अशुद्धियों का निराकरण कर ज्ञानी लोगों को विशुद्ध ज्ञान उपलब्ध कराने का श्रेय महर्षि दयानन्द सरस्वती को है, जिन्होंने 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' ग्रन्थ लिखा। इस कारण यह ग्रन्थ बहुत मान्यता रखता है। इस भूमिका-ग्रन्थ के बाद उन्होंने ऋग्वेद व यजुर्वेद का भाष्य भी लिखा।

7

विकृत कालक्रम

प्रत्येक प्रकार की अशुद्धि दो कारणों से ही प्रतिपादित होती है—अज्ञानवश अथवा सोची-समझी रणनीति द्वारा। अज्ञानता से प्रेरित अशुद्धि को शिक्षा, समझदारी, सूझ-बूझ और उचित सामाजिक हस्तक्षेप द्वारा शुद्ध किया जा सकता है, लेकिन सोची-समझी रणनीति द्वारा प्रतिपादित अशुद्धि लगातार फलती-फूलती रहती है, क्योंकि अहितकारी तत्त्व उन्हें प्रचारित-प्रसारित कर स्थायी बना देते हैं। इस प्रकार से ये अशुद्धियाँ राष्ट्रीय जीवन का अंग बन जाती हैं। श्रेष्ठ विद्वान् भी, जो कि ऐसे समाज में पले हों जहाँ अशुद्धियाँ मान्य हों, इन मस्तिष्क-प्रदूषक सूक्ष्म तत्त्वों को नहीं ढूँढ पाते। केवल दुर्लभ, आप्त और समर्पित विद्वान् ही ऐसी अशुद्धियों का पता लगा सकते हैं। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति का सामाजिक कर्त्तव्य बनता है कि वह इन अशुद्धियों को सही करने के लिए तथा वास्तविक तथ्यों को ऊपर लाने के लिए इस कार्यक्षेत्र में आगे बढ़े।

अमेरिका के उच्च विद्यालयों में पढ़ाए जाने वाले कई महत्त्वपूर्ण गलत तथ्यों में से कुछ का वर्णन यहाँ किया जा रहा है। जार्जिया उच्च विद्यालय की दसवीं की विश्वसाहित्य पाठ्यपुस्तक में से उद्धृत कुछ परिभाषाएँ नीचे दी गई हैं। यह पाठ्यपुस्तक और इस प्रकार की अन्य पाठ्यपुस्तकें सम्पूर्ण पाश्चात्य सभ्यता के विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जाती हैं। इस पाठ्यपुस्तक में प्रतिपादित किए गए कुछ तथ्य इस प्रकार हैं :

1. 'आर्यों' को एक जाति माना गया है और इसे भारतवर्ष

पर आक्रमणकारियों के रूप में चित्रित किया गया है।

2. आक्रमण लगभग 1500 ई॰पू॰ में किया बताया गया।
3. वैदिक काल 1500–500 ई॰पू॰।
4. ऋग्वेद की रचना 1000 ई॰पू॰।
5. महाभारत का समय 400 ई॰पूर्व॰ से 400 ई॰ पश्चात्।
6. रामायण–काल 200 ई॰पूर्व॰ से 200 ई॰ पश्चात्।
7. व्यास का अर्थ संग्रहकर्त्ता अथवा नियोजक।
8. कृष्ण को एक पंथ के नेता के रूप में दर्शाया गया है।
9. पाठ्य–पुस्तक में लेख की टिप्पणी 'मानवरूपी भगवान्'।
10. पौराणिक कथाओं को विशुद्ध अलंकारी विचारों और भावनाओं के विपरीत केवल शब्दार्थ रूप में ही लिया गया है।

पाठ्यसामग्री निष्पक्ष दृष्टि से सर्वथा गलत है। सामाजिक विज्ञान के इन विचारों के विरोधी पाश्चात्य और भारतीय विद्वानों द्वारा प्रतिपादित सामग्री तथा अन्य प्रतिरोधी तथ्यों को इसमें शामिल नहीं किया गया है। अतएव, उपर्युक्त पुस्तक के लेखकों की टिप्पणियाँ और व्याख्याएँ एकपक्षीय, अशुद्ध और इतिहास-विरुद्ध हैं। आश्चर्यजनक, लेकिन सत्य यह है कि विश्व के सर्वाधिक स्थिर लोकतांत्रिक राष्ट्र में इन पुस्तकों को विपणन, विक्रय तथा राजनीति व कूटनीतिक नीतियों को ध्यान में रखकर मान्यता देने हेतु लिखा गया है, किन्तु तथ्यों को किसी भी चतुराई से छुपाया नहीं रखा जा सकता।

तथ्य इस प्रकार हैं :

1. आस्ट्रिया और जर्मनी जैसे कुछ देशों ने पश्चिम की भाँति 'आर्य' शब्द का दुरुपयोग किया है। संस्कृत भाषा में आर्य का अर्थ श्रेष्ठ होता है और इस शब्द का अभिप्राय किसी जाति, पंथ, मत अथवा वर्ण से नहीं है। यह गुणात्मक है और व्यक्ति के गुणों को इंगित करता है। विशुद्ध नामांकन आर्यन नहीं, आर्य है।

योगी अरविन्द के अनुसार 'आर्य शब्द सुव्यवस्थित जीवन की एक विशेष नैतिक और सामाजिक नियमबद्धता, साहस, दृढ़ता, पवित्रता, मानवता, दयाभाव, निर्बलों का संरक्षण, स्वतन्त्रता, सामाजिक कर्त्तव्यनिष्ठा, जिज्ञासु, बुद्धिमान् और विद्वानों के प्रति आदर-भाव और सामाजिक परिपूर्णता को व्यक्त करता है। किसी भी भाषा में ऐसा कोई शब्द नहीं जिसका इतिहास इससे अधिक महान् रहा हो।

आर्यों ने कभी भी भारतवर्ष पर आक्रमण नहीं किया। वे हिमालय-क्षेत्र तथा हिमालय से निकली नदियों के किनारों तथा तटों पर बसे भारत के मूल निवासी हैं। लाखों वर्ष पूर्व हिमालय से उत्पन्न तथा हिमालय से निकली नदियों में 'विस्तृत सरस्वती नदी' के सूख जाने पर आर्य सरस्वती-क्षेत्र से वर्तमान अफगानिस्तान (गन्धार) होते हुए पश्चिम की ओर चले गए। यह सब-कुछ उपग्रह- तकनीक, सांस्कृतिक, मानव-शरीररचनाशास्त्र और भारतीय ज्ञान-विषयक शोधों द्वारा भली-भाँति अन्वेषित किया जा चुका है। अभी हाल ही में सन् 1996 में 'विश्व वैदिक अध्ययन संस्था' (The World Association for Vedic Studies) ने, 1996 में, 'पुन: सिंधु-सरस्वती युग और प्राचीन भारतवर्ष की यात्रा' विषय पर एटलाण्टा, जार्जिया, अमेरिका में एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया था। इस सम्मेलन में सांस्कृतिक ऐन्थ्रोपॉलोजी, पुरातत्त्वविज्ञान, दर्शनशास्त्र, भाषा, धर्म और विभिन्न विज्ञानों के सुप्रसिद्ध आचार्यों एवं विद्वानों ने भाग लिया। इन विद्वानों ने, जिनकी संख्या तीन सौ से अधिक थी, निष्कर्ष निकाला कि 'हाल में पुरातत्त्व-खोजों द्वारा यह पूर्ण रूप से स्थापित किया जा चुका है कि भारतीय उपमहाद्वीप पर सभ्यता का उद्भव 5000 ई॰पू॰ से अस्तित्व में रहा, जो कि 1000 ई॰पू॰ तक अनवरत रूप से चलता रहा। आर्यों के आक्रमण-सिद्धान्त की पुष्टि में किसी भी प्रकार का कोई समर्थन नहीं मिलता।' [17]

कुछ ही समय पूर्व (ई० सन् 1998) डॉ० राजाराम और डॉ० नटवर झा जिन्हें सिंधु-सरस्वती के मैदानों में हुई हड़प्पा-खुदाई से प्राप्त 2000 मोहरों की सफलतापूर्वक जाँच करने का सुयश प्राप्त हुआ है। हार्वर्ड विश्वविद्यालय के डॉ० रिचर्ड मेडोज, जो कि 'हड़प्पा पुरातत्त्व अनुसंधान प्रोजेक्ट' के निदेशक हैं, ने हड़प्पा-सभ्यता के बर्तनों के नमूनों के काल को 3500 ई०पू० बताया है। मेडोज ने इससे आगे कहा कि मिट्टी के बर्तनों पर पाए गए सिन्धु-अभिलेख अन्य सभी प्राप्त अभिलेखों से पुराने हैं। डॉ० राजाराम, जो नासा (नेशनल एरोनॉटिक्स एण्ड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन : अमेरिकन राष्ट्रीय हवाई और अन्तरिक्ष प्रबंधन) के विशेषज्ञ एवं कृत्रिम बुद्धिमत्ता के भी विशेषज्ञ और परामर्शदाता रहे हैं, उन्होंने मिट्टी के बर्तनों पर पाए गए अभिलेखों को पढ़ने में सफलता प्राप्त की है। उन्होंने इन अभिलेखों को 'इला वरतते वर' पढ़ा है, इसका अर्थ यह बताया है कि 'सरस्वती नदी समृद्ध भूमि को चारों ओर से घेरे हुए थी।' डॉ० राजाराम ने मई 1999 में आगे कहा कि 'यदि ऋग्वैदिक अवधारणाएँ 3500 ई०पू० से पहले ही अस्तित्व में थीं तो विद्वानों को 'मेसोपोटामिया को सभ्यता का पालना' बतानेवाली भ्रांत धारणाओं, तथा अन्य भारतीय इतिहास के भ्रांत विचार जैसे 'आर्यों द्वारा आक्रमण सिद्धांत' पर पुनः विचार करना होगा। 'आर्यों द्वारा आक्रमण' के झूठे आवरण को उपर्युक्त ही असत्य सिद्ध किया जा चुका है। [19]

डॉ० जोनाथन मार्क केनोयेर, जो कि विसकोनसिन-मेडिसन (Wisconsin-Madison, USA) विश्वविद्यालय के 'एलवेहजीम (Elvehjiem) कला संग्राहालय' में मानवविज्ञान के प्रोफेसर तथा प्रबंधकर्त्ता हैं, ने 'हड़प्पा पुरातन अभिलेख और नई खोजें (1999)' पर अमेरिकन सेन्टर इस्लामाबाद, पाकिस्तान में अपना व्याख्यान देते समय उपर्युक्त विचारों को पुनः बलपूर्वक व्यक्त किया। प्रो० केनोयेर ने कहा, 'हमें दक्षिण एशियाई उद्‌भव-स्थली को

प्रतिस्थापित करनेवाले स्वस्ति के चिह्न प्राप्त हुए हैं।' प्रो॰ केनोयर ने जोर देकर आगे कहा कि हमें हड़प्पा-स्थली पर ऐसी सामग्री मिली है, जिसका उद्भव मिश्र की सभ्यता में हुए भारोत्तोलन सामग्री के उद्भव से पूर्व सिन्धु घाटी में हुआ था। [20]

'राष्ट्रीय भूभौतिकी अनुसंधान संस्थान हैदराबाद, भारत' के भूतपूर्व प्रो॰ डॉ॰ जे॰जी॰ नेगी ने अप्रैल 1999 में कहा कि पुरातत्त्व और पुरातन जलवायु-विज्ञान के अध्ययनों से यह स्पष्ट हो चुका है कि भूमि की ऊपरी परतों में हुई हलचल से, प्राचीन भारतवर्ष में सिंधु-सरस्वती का बहाव बदलने तथा जल विलुप्त होने से सिंधु घाटी की सभ्यता की मोहनजोदड़ो बस्तियों का विनाश हुआ था। उन बस्तियों का विनाश 'आर्यों के आक्रमण' जैसी भ्रान्त धारणाओं से नहीं हुआ था। [17]

कई आधुनिक भारतीय विद्वानों ने जैसे कि महर्षि दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, स्वामी रामतीर्थ, योगी अरविन्द और नोबेल पुरस्कार से पुरस्कृत रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शोध कर यह निष्कर्ष निकाला है कि आर्यों का मूल निवास-स्थान हिमालय और नदी के तटों पर था। [1-4, 6-8, 10-12]

यह बताना यथोचित रहेगा कि 10 अपैल, 1866 को एक बहुत महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना घटित हुई थी। लंदन, इंग्लैण्ड में एक गुप्त सभा का आयोजन किया गया था, जहाँ पर 'आर्यों द्वारा भारत पर आक्रमण के सिद्धांत को घड़ने के लिए' एक षड्यन्त्र की रचना की गई। इस सिद्धांत का उद्देश्य सत्य को छिपाना था, 'ताकि भारतीय यह नहीं कह सकें कि अंग्रेज विदेशी थे। चूँकि भारत पर आरम्भ से विदेशियों का शासन रहा है, अतः भारत ईसाइयों के उदार शासन को भी निभा सकता है। 'एक चतुर पादरी एडवर्ड थॉमस ने लॉर्ड स्टॅगफर्ड की अध्यक्षता में इस झूठे सिद्धांत का प्रतिपादन किया।' [३] यह अपने समय की सबसे बड़ी कूटनीतिक चाल थी। तब से अंग्रेजों द्वारा इसे भारतीय इतिहास के